उड़ते पत्ते

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक

देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लि०,

इलाहाबाद

१९५९

लेखक

अपनी बात

'उडते पत्ते' मेरा ग्यारहवाँ मौलिक उपन्यास है। अपने जीवन के पैंतालीस वसन्त देखकर जिस मोड पर इस समय मैं जा पहुँचा हूँ, उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत यही मेरा अन्तिम उपन्यास रहे। इसका कथानक गणतत्र भारत के स्वतत्र वातावरण की ऐसी प्रारभिक परिस्थितियो और विडम्बनाओ की पृष्ठभूमि पर निर्मित किया गया है, जो राष्ट्र, समाज और व्यक्ति—सभी के लिए किसी इन्द्रजाल से कम नही।

स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए जिन अगणित व्यक्तियो ने अपनी आहुतियाँ दी, जिन अनेक साहित्यकारो ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से जन-जन को प्रबुद्ध बनाया, किन्तु स्वय तिल-तिलकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देने की अभिशप्त घडियो का उन्हे सामना करना पडा और अब तक जिनके सामन यही विवशता है, उनकी ओर न तो हमारे राष्ट्र ने समुचित ध्यान दिया, न समाज ने। इस विपम वातावरण ने हमारे समाज को इतना विषाक्त कर दिया है कि आज घर-घर मे घोर अशान्ति और दारुण व्यथा-पीडा की ही काली छाया दीख रही है।

बीसवी सदी की उच्च शिक्षाप्राप्त सन्तति भी अपने माता-पिता और समाज के प्रति कितनी उच्छृङ्खल, कर्त्तव्यच्युत और उद्दण्ड सिद्ध हो रही है, इसकी सजीव झाकी 'उडते पत्ते' मे चित्रित करने की चेष्टा की गई है। प्रकारान्तर मे ऐसी सन्तति हमारे राष्ट्र के लिए कितनी विघातक होगी, यह कहने की आवश्यकता नही रह जाती।

शाखा-च्युत उडते पत्ते जिस प्रकार सर्वथा अस्तित्त्वहीन रहते है, ठीक उसी प्रकार इस विश्व के रगमच पर मानव भी, परिस्थितियो की आँधी के झोको से, कही-का-कही जा पहुँचता है और किसी काम का नहीं रह जाता। वह न केवल कर्त्तव्यच्युत और उच्छृङ्खल हो जाता है, प्रत्युत किसी अज्ञात-सी चिनगारी का स्पर्श पाकर जहाँ स्वय जलकर भस्म हो जाता है, वही दूसरो को भी जलाकर भस्म कर डालता है। यह विनाशक प्रवृत्ति आज के मानव मे ओर आज की सन्तति मे क्यो पनप रही है, इसका मनोवैज्ञानिक ओर सकेतिक विश्लेषण 'उडते पत्ते' की कथावस्तु मे सन्निहित है।

'उडते पत्ते' मूलत सामाजिक उपन्यास है, किन्तु राष्ट्रीय चेतना की उस पृष्ठभमि पर इसका निर्माण किया गया है, जो आज के युग मे समाज के प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को प्रभावित कर रही है। इस उपन्यास के देवदत्त शर्मा, प्रफुल्ल घोष, निर्मल नागर और सुमित्रा तथा नलिनी की विचार-धाराएँ, यदि पाठको के मनोरजन के साथ-साथ उनको तनिक भी प्रभावित कर सकी ओर हरीश-जैसी उच्च-शिक्षाप्राप्त, किन्तु कर्त्तव्य-च्युत और उच्छृङ्खल सन्तति से सदा सतर्क रहने और उसके प्रति अपने माया-मोह के आवरण को उतार फेकने की प्रेरणा दे सकी, तो मै अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

हिन्दी ससार के मूर्धन्य समालोचक, साहित्य-वाचस्पति श्री पदुमलाल पुन्नालालजी बख्शी ने 'उडते पत्ते' की पाण्डुलिपि देखकर ही मई १९५५ की 'सरस्वती' मे इसके सबध मे जो आलोचनात्मक और प्रशसात्मक विचार व्यक्त किए थे, उसके लिए मै उनका कृतज्ञ हूँ और मुझे यह विश्वास है कि जो रस श्री बख्शीजी को इस उपन्यास मे मिला है, वही रस इसके सभी पाठको को उपलब्ध होगा।

इलाहाबाद,
२० जुलाई, १९५६

—देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'

उड़ते पत्ते

—१—

थकी-माँदी सुमित्रा बिस्तर पर जाकर लेटी ही थी कि टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। क्षण भर को वह एक खीझ से भर उठी। यह टेलीफोन भी अजीब बला है! दिन हो या रात, कोई सोता हो या जागता, लेकिन टेलीफोन की घण्टी है कि अचानक टनटना उठती है, और जब तक रिसीवर हाथ में लेकर उसके एक छोर को कान के पास और दूसरे को ओठो के निकट ले जाकर दो-एक बाते न कर ली जाएँ, तब तक छुटकारा नही मिलता। यो प्रेम की उस रङ्गीन दुनिया की बात दूसरी है, जिसमे प्रेमी-प्रेमिका इस टेलीफोन की घण्टी को ही मिलन-दूत समझा करते है।

सुमित्रा अभी-अभी शहर से लौटकर घर आई थी। भारतीय गणतन्त्र के जन्मोत्सव पर मनाए गए दीपोत्सव को देखने वह गई थी। यह दीपोत्सव ही भारतीय इतिहास की वह मगल वेला थी, जिसे प्राप्त करने के लिए हमारे देशवासियो ने जाने क्या-क्या होम कर दिया! अगणित बलिदानो और असीम अत्याचारो की कहानियाँ इस मगल वेला की पृष्ठभूमि पर सिसक रही है। यही कारण था कि भारत के जन-जन ने दीपोत्सव मनाकर अपना हर्षोल्लास व्यक्त किया। परन्तु करोडो दीपो की इस जगमगाहट मे भी एक मूक उदासीनता की छाया का अस्तित्त्व था। अज्ञान और सुप्त मानव भले ही इस काली छाया को न देख सका हो, किन्तु सुमित्रा के अन्दर की जागरूक नारी ने उस छाया को स्पष्टत देखा, समझा, और कदाचित् इसीलिए दीपोत्सव देखकर लौटते ही वह एकदम लेट रही।

सुमित्रा ने स्वीकार किया कि यह सब स्वाभाविक ही है। किसी त्योहार की रस्मअदाई कर लेने से ही, जिस प्रकार आनन्द और उल्लास का उत्स नही फूट निकलता, उसी प्रकार दीपोत्सव मना लेने से ही भारत का जन-जन वास्तविक आनन्द का अनुभव नही कर सकता। यह सब तो मानव की परिस्थितियो और तज्जन्य मनोदशा पर ही निर्भर करता है। और, स्वतन्त्र भारत को जिन भूकम्पी परिस्थितियो का सामना करना पडा है, उनमे रहकर सच्चा आनन्द और उल्लास सम्भव नही। आज की अगणित समस्याओ के समाधान मे उलझकर हमारी राष्ट्रीय सरकार जनसाधारण के भोजन-वस्त्र और मजदूरो के पारिश्रमिक की उलझी लडियाँ भी तो अब तक नही सुलझा सकी। फिर, हमारे राष्ट्र का यह दुर्भाग्य ही है कि जिस महापुरुष की कठोर साधना के फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हुआ, उसी की निर्मम हत्या स्वतन्त्रता के प्रथम वर्ष मे ही कर डाली गई। राष्ट्रपिता को सदा के लिए खोकर और अप्रत्याशित विषम परिस्थितियो मे पडकर चक्की के दो पाटो के बीच पिसती जनता भला, गणतन्त्र स्थापना की मगल वेला मे भी सच्चे आनन्द और उल्लास का अनुभव कैसे कर सकती ?

सुमित्रा आज प्रभात वेला से ही इन्ही विचार-धाराओ पर तिर रही थी। उसकी तनिक भी इच्छा नही थी कि वह शहर का दीपोत्सव देखने जाए। परन्तु जिस छात्रावास की वह अभिभाविका है और जिस महिला-विद्यालय की वह आचार्या है, उसकी छात्राओ ने जब विशेष अनुरोध किया, तो उसे अपनी मनोदशा को दबाकर जाना ही पडा। उसका मन उद्विग्न था, तन शिथिल था और उसके विचारो मे एक ज्वार था। ऐसी स्थिति मे छात्राओ के साथ इधर-उधर घूमते-घामते वह शीघ्र ही थककर चूर हो गई। यही कारण था कि लौटते ही वह अपने बिस्तर पर जा लेटी।

उद्विग्न सुमित्रा जब चुपचाप लेटी रहना चाहती थी, तभी टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। बडी खीझ हुई सुमित्रा को, परन्तु इस खीझ पर नियन्त्रण कर वह उठ बैठी, और परिचारिका न जब टेलीफोन का रिसीवर उसके हाथो पर धर दिया, तो वह सचेष्ट होती हुई बोली—'हल्लो !'

टेलीफोन मे सुनाई पडा—'गान्धी-महिला-विद्यालय की आचार्या कुमारी सुमित्राजी से मैं बात करना चाहती हूँ।'

आवाज पहचानने मे सुमित्रा को देर नही लगी। श्रीमती नागर बोल रही थी। इस नागर-परिवार से सुमित्रा की बडी घनिष्ठता है। पजाब के नाते इस परिवार का स्नेह सुमित्रा को स्वभावत प्राप्त हो चुका है।

वह दिन क्या सुमित्रा कभी इस जीवन मे भूल सकती है, जब पाकिस्तान के कुछ हिमायती दानवो ने पश्चिमी पजाब पर कहर बरसा दिया था। वहाँ के अल्पसख्यक हिन्दुओ का जीवन नरक बन गया था और अपनी ही जन्मभूमि मे उन्हे साँस लेना भी दूभर हो उठा था। आगजनी, लूटमार, बलात्कार और दिन-दहाडे होनेवाली हत्याओ से त्रस्त होकर अन्य अल्पसख्यक हिन्दुओ की भाँति सुमित्रा को भी अपने कहे जानेवाले पजाब से सदा के लिए बिदा ले लेनी पडी थी।

मीलो लम्बे काफिले के साथ सुमित्रा अपने पिता के साथ भारत की राजधानी दिल्ली की तरफ बढी आ रही थी कि मार्ग मे ही आक्रमणकारियो का भीषण हमला हुआ और सैकडो नर-नारियो के साथ सुमित्रा के पिता भी उसी हमले मे इस दुनिया मे कूच कर गए।

सुमित्रा को उस दिन की स्मृति चाहे जब दु खी कर जाती है। आँसुओ की गगा-यमुना से उसने अपने पिता के निर्जीव शरीर को तर कर दिया था, और अपने जन्मदाता की ससम्मान अन्त्येष्टि करने की साध पूरी न होते देख, सिसक-सिसककर अपनी चेतना खो दी थी। उसे स्मरण नही कि उसकी मूर्च्छना के बीच, उसके पिता की अन्त्येष्टि किस प्रकार और कहाँ की गई। काफिले के परिचित लोगो ने उस घटनास्थल से लगभग बीस-पच्चीस मील की दूरी पर, रात्रि के सघन अन्धकार मे, सुमित्रा की चेतना लौटने पर यही कहा था कि अन्य सैकडो आहत नर-नारियो के साथ उसके पिता को भी घटना-स्थल पर ही ससम्मान दफना दिया गया था।

अपने पिता को खोकर सुमित्रा रात-दिन अभिभूत रहने लगी। किन्तु जब ३० जनवरी १९४८ को सध्या समय एक आततायी मरहठा नाथूराम विना-

यक गोडसे ने पिस्तौल की गोलियो का निशाना बनाकर राष्ट्रपिता गान्धी की हत्या कर डाली, तब सुमित्रा के मन पर गहरी प्रतिक्रिया हुई। उसने स्वीकार किया कि जब सारा राष्ट्र अपने राष्ट्रपिता के प्राणो की रक्षा न कर सका, तब सुमित्रा बेचारी अपने पिता की रक्षा कैसे कर सकती थी! और, राष्ट्रपिता के निधन पर समस्त राष्ट्र के बहनेवाले आँसुओ ने, सुमित्रा के उस दुख को बहुत-कुछ धूमिल कर दिया, जो उसे अपने पिता के निधन पर रात-दिन बेचैन किए रह ा था। उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि राष्ट्रपिता के सिद्धान्तो पर चलकर वह अपने देश की बहिनो की सेवा कर अपने मानवीय कर्त्तव्यो को पूरा करेगी।

दिल्ली पहुँचकर उसे अपने परिचितो का स्मरण करना पडा। श्रीमती नागर का ध्यान उसे इसी सिलसिले मे आया। एक समय था, जब श्रीमती नागर—नलिनी—उसकी सहपाठिनी रह चुकी थी। परन्तु मैट्रिक हो जाने पर नलिनी के पिता ने एक सम्पन्न परिवार के तरुण के साथ नलिनी के हाथ पीले कर दिए थे और उसकी शिक्षा बन्द हो गई थी। सुमित्रा एम० ए० तक पढती चली गई और बाद मे एक कालेज मे प्रोफेसर हो गई थी।

नालिनी अपने पति के साथ तभी से प्रयाग मे रहती है। जब कभी वह अपनी जन्मभूमि गई, तब इस सुमित्रा से बराबर मिलती रही। इसी स्नेह-सम्बन्ध के आधार पर सुमित्रा ने दिल्ली से नलिनी को बिना किसी प्रकार की सूचना दिए ही, इलाहाबाद के लिए प्रस्थान कर दिया। डूबते को तिनके का सहारा।

और, जब पता लगाते-लगाते सुमित्रा अचानक ही नलिनी के घर जा पहुँची, तब नलिनी को पहले तो कुछ आश्चर्य हुआ; परन्तु समाचारपत्रो मे पढे समाचारों और स्वय सुमित्रा के मुख से उसकी करुण कहानी सुनकर उसे सन्तोष हुआ कि उसकी सहपाठिनी किसी तरह जीवित तो है। स्वभावत. सुमित्रा को समस्त सुविधाएँ नलिनी के परिवार मे बिना माँगे मिल गईं।

राष्ट्रपिता की अप्रत्याशित हत्या हो जाने पर उनकी स्मृति मे प्रयाग के कुछ काग्रेस-कार्यकर्त्ताओ की प्रेरणा से गान्धी-महिला-विद्यालय की स्थापना

की गई। इस स्थापना मे नलिनी के पति का अनन्य हाथ था। इस दशा मे आचार्या की नियुक्ति का प्रश्न उपस्थित होने पर सुमित्रा को ही यह सम्मान दिया गया। सुमित्रा ने अपनी योग्यता से शीघ्र ही यह प्रमाणित कर दिया कि उसका चुनाव सर्वथा उपयुक्त था।

सुमित्रा के जीवन की इतनी बडी कहानी जिस नलिनी के साथ विजडित हो, उसकी आवाज को टेलीफोन मे पहचानने मे भला, सुमित्रा कैसे चूक सकती थी। उसने मुसकराते हुए कहा—'नमस्ते, जीजी! कहिए, इतनी रात बीते कैसे स्मरण किया?'

'अरे, आज भारतीय जनतन्त्र के जन्मोत्सव की मगल वेला मे जब घर-घर दीपोत्सव मनाया जा रहा है, तब तुम मेरे यहाँ नही आई?'

'मैने व्यक्तिगत रूप से यह दीपोत्सव नही मनाया, जीजी! और ।'

'इसीलिए मेरे यहाँ नही आई।' बीच मे ही नलिनी बोल उठी—'मै तुम्हारा हृदय जानती हूँ, तुम्हारे हृदय की पीडा भी पहचानती हूँ। लेकिन मेरे यहाँ तुहे आना ही होगा। मै जानती हूँ, अकेली रहकर तुम वहाँ जाने क्या-क्या सोच रही होगी। अभी आओ। कार भेज रही हूँ। हम सब तुम्हारी प्रतीक्षा मे बैठे है। लता बेटी भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। नही आओगी, तो जानती हो, दीपावली पर जिस प्रकार जुवा खेला जाता है, आज भी हम लोग जुवा खेलने की तैयारी कर रहे है, और तुम्हारे न आने पर मै तुम्हे ही जुए के दाँव पर लगा दूँगी। बडी बहिन के नाते मुझे यह अधिकार है। कही मै हार गई, तो समझ लो कि ।'

'नही—नही, ऐसा न कीजिए।' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'गाडी भेज दीजिए, मै फौरन चली आऊँगी।' और सुमित्रा ने रिसीवर रख दिया। इस प्रसग को सुमित्रा आगे नही बढाना चाहती थी।

—२—

दीपोत्सव और उल्लास !

पूजन और जुवा !

सुमित्रा को जागरूक नारी ने स्वीकार किया कि इस दुनिया का अपना रङ्ग-ढङ्ग कभी बदल नही सकता। जिस तरह सूरज, चाँद और सितारे अपनी रफ्तार मे सदा प्रकाश और अंधकार के साथ आँखमिचौनी खेलते रहते है, उसी तरह इस दुनिया की गतिविधि मे भी कभी कोई अन्तर न आएगा। कोई मरे या जिए, कोई भूखा रहे या नगा, उत्सवो और त्योहारो का उल्लास किसी-न-किसी रूप मे बराबर बना रहेगा।

सुमित्रा अनिच्छापूर्वक बिस्तर से उठी। उसने अपनी पोशाक बदली और ड्राइगरूम मे बैठ, वह कार की प्रतीक्षा करने लगी।

सुमित्रा को कही बाहर जाने के लिए तैयार देख, परिचारिका ने पूछा—"कही जा रही है आप?'

'हाँ, नागर बहिन ने बुलाया है। कार आ रही है।'

और, ठीक इसी समय हार्न देती कार फाटक पर आ खडी हुई। सुमित्रा ने परिचारिका से कहा—'कम-से-कम दो घण्टे लगेगे। तुम सो जाना। मै आकर 'काल-बैल' दबाकर तुम्हे जगा लूँगी।' और सुमित्रा कार की तरफ बढ ही रही थी कि टेलीफोन की घण्टी फिर एक बार जोरो से टनटना उठी।

सुमित्रा के बढते पग अचानक रुक गए। उसे लगा कि यह टेलीफोन की घण्टी आज शायद उसे दम न लेने देगी—सोना तो बहुत दूर की बात है। फिर नागर बहिन की कार फाटक पर खडी है। उन्हे वह अभी-अभी वचन भी दे चुकी है। इस दशा मे उसे कार पर जाना ही होगा।

सुमित्रा कुछ क्षण इसी उलझन मे खडी रही कि वह कार की ओर बढे या लौटकर टेलीफोन सुनने जाए।

परिचारिका अपनी स्वामिनी की उलझन शायद समझ गई; बोली—'यह टेलीफोन की घण्टी आज आपको बड़ा परेशान कर रही है। आपके चले जाने पर तो मै कह देती कि ।'

'कि मै बाहर गई हूँ।' बीच मे ही सुमित्रा ने परिचारिका की बात पूरी कर दी—'यही न?'

'जी! आप कहे तो यही कह दूँ मै? आप जाइए, रात भीग रही है।' पारिचारिका ने अनुरोध के स्वर मे कहा।

'नही!' सुमित्रा ने कहा—'जब तक मै यहाँ हूँ, झूठ क्यो कहा जाए। फिर पता नही, किसका फोन हो और कैसा जरूरी काम हो। मै स्वय उत्तर दिए देती हूँ। आज भारतीय जनतन्त्र के जन्मोत्सव की इस मगल वेला मे जब घर-घर दीपोत्सव मनाया जा रहा हो, तब हम सभी को यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि राष्ट्रपिता गान्धी के व्रत—सत्य और अहिंसा—का हम आजीवन पालन करेगे। फिर किसीको झूठ कहकर धोखा क्यो दिया जाए?' और सुमित्रा टेलीफोन की तरफ बढ गई।

परन्तु टेलीफोन की घण्टी थी कि दम नही ले रही थी—अनवरत टनटना रही थी। बडी खीझ हुई सुमित्रा को। एक क्षण को उसे लगा कि इस टेलीफोन को वह अपने निवास-स्थान से हटाकर छात्रावास मे कही रख दे। लेकिन छात्रावास मे, सम्भव है, इस टेलीफोन का दुरुपयोग होने लगे और कुछ मनचली छात्राओ का रोमास चलने लगे। नही-नही, ऐसा वह नही करेगी।

'हलो !' टेलीफोन का रिसीवर उठाकर सुमित्रा ने पूछा—'किससे बात करना चाहते हैं आप ?'

'जी, मैं आचार्या सुमित्राजी से बात करना चाहती हूँ ।' बोलनेवाली ने 'चाहती' पर पर्याप्त जोर दिया ।

'क्षमा कीजिए मेरे सम्बोधन पर ।' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'कहिए, मैं ही सुमित्रा हूँ ।'

'ओह ! नमस्ते ! मैं डिप्टी कलेक्टर सिनहा साहब के घर से बोल रही हूँ । आपकी शिष्या रजनी की माँ हूँ ।'

'हाँ-हाँ, कहिए, क्या आज्ञा है ? रजनी तो आज छात्रावास से छुट्टी लेकर आपके साथ घर पर है न ! भारतीय गणतन्त्र के जन्मोत्सव की मगल वेला मे मनाए जानेवाले इस दीपोत्सव पर आप मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार कीजिए ।'

'शुभकामनाओ के लिए हम लोग आपके आभारी है । रजनी कह रही है कि इस अभूतपूर्व अवसर पर हम लोग जो दीपोत्सव मना रहे है, उसमे पधारने की प्रार्थना वह पहले ही आपसे कर चुकी है, परन्तु अब तक आप आ नही सकी । यदि कष्ट न हो, तो कार भेज दूँ ? दस मिनट के लिए ही सही, परन्तु आइए अवश्य ।'

'सचमुच मैं भूल गई । कुछ छात्राओ के साथ मुझे अनिच्छापूर्वक शहर जाना पडा । थककर चूर हो रही हूँ । लेकिन रजनी का आग्रह टाल नही सकती । फिर आपने स्वय इतनी चिन्ता की है । मैं अभी आ रही हूँ । कार भेजने की आवश्यकता नही । श्रीमती नागर की कार अभी-अभी आ चुकी है । उनके यहाँ होती हुई, उन्ही की कार पर मैं आपकी सेवा मे भी पहुँच रही हूँ । श्रीमती नागर के घर कुछ देर लग जाए, तो आप यह न समझ ले कि मैं फिर भूल गई । उनसे छुट्टी मिलते ही मैं आपके यहाँ निश्चय ही पहुँचूँगी ।'

'अच्छी बात। हम सब आपकी बाट जोहेगे। अग्रिम धन्यवाद !'

सुमित्रा ने रिसीवर फोन पर रख दिया और ड्राइगरूम की तरफ बढ गई। परिचारिका से बोली—'अब मै जा रही हूँ। एक जगह का निमन्त्रण और मिल गया है। बहुत देर होगी लौटने मे।' और सुमित्रा जाकर कार पर बैठ गई।

बिजली के अगणित रग-बिरगे लट्टुओ के जगमगाते प्रकाश मे कार तीव्र गति मे श्रीमती नागर के घर की ओर दौडी जा रही थी। सडक की दोनो बाजुओ पर खडे मकानो की ऊँची-ऊँची छतो पर सहस्त्रो जलते दीपक यह सूचित कर रहे थे कि हमारा राष्ट्र अभूतपूर्व उल्लास मना रहा है।

दूर कही किसी घण्टा घर की घडी दस बजा रही थी। परन्तु कार मे बैठी सुमित्रा अपने-आपमे ही उलझ रही थी। टेलीफोन की घण्टी को लेकर वह वैज्ञानिक आविष्कारो की उन्नति पर एक क्षण के लिए विचार करने लगी। बिजली से लेकर परमाणु-बम और हाईड्रोजन-बम तक का आविष्कार हो चुका है।

वैज्ञानिक आविष्कारो का जहाँ तक सम्बन्ध है, सुमित्रा ने स्वीकार किया कि दुनिया बहुत उन्नत हो चुकी है, परन्तु मानवता का जहाँ तक सम्बन्ध है, यह दुनिया दिनोदिन घोर सकीर्ण होती जा रही है—स्वार्थ की सीमित-सी सकीर्ण परिधि मे सिकुडती जा रही है। इन वैज्ञानिक आविष्कारो के सहारे आज का मानव दूसरो पर अपना एकच्छत्र प्रभुत्त्व स्थापित करना चाहता है। निर्बलो को भूनकर नष्ट कर देना चहता है। मानव का कल्याण न कर, वह उसका सहार करने मे प्रवृत्त हो रहा है। व्यक्तिगत सुख को ही आज की दुनिया सर्वोपरि समझ रही है। मानवता का यह कैसा परिहास है—कैसी विडम्बना !

फिर, गान्धी के इस देश मे यदि मानवता इतनी सकीर्ण रहेगी, तब इस राष्ट्र का उद्धार कैसे होगा—कब होगा ? उसने स्वीकार किया कि आज का

मानव पथभ्रष्ट हो चुका है। वैज्ञानिक आविष्कारो का दुरुपयोग ही वह कर रहा है।

सुमित्रा का मस्तिष्क भन्ना रहा था। वह अपनी मनोदशा को लेकर खीझ रही थी कि सहसा एक झटके के साथ कार खडी हो गई। इस झटके से सुमित्रा ने प्रकृतिस्थ होते हुए देखा कि वह श्रीमती नागर के घर पहुँच चुकी है।

— ३ —

बादलो के छोटे-बडे टुकडे नीलाकाश मे इधर-उधर तैर रहे थे, किन्तु पानी बरसने के कोई लक्षण नही दीख रहे थे। अपने मकान की तिमजिली खुली छत पर पण्डित देवदत्त शर्मा चुपचाप खडे थे। आसपास और दूर तक के मकानो पर अगणित दीपक जगमगा रहे थे। सर्वत्र दीपोत्सव मनाया जा रहा था। भारतीय गणतत्र के जन्मोत्सव की मगल वेला मे भारत के कोटि-कोटि नर-नारियो का उल्लास इस दीपोत्सव के रूप मे फूटा पड रहा था।

शर्माजी की छत पर भी कुछ दीपक अब तक जगमगा रहे थे। स्नेह चुक जाने पर अनेक दीपक बुझ भी चुके थे। शर्माजी ने एक बुझते हुए दीपक को देखा और उन्हे लगा कि धीरे-धीरे सभी दीपक इसी तरह बुझ जायेंगे और पुन घना अन्धकार फैल जाएगा।

शर्माजी तो दीपक जलाने के पक्ष मे ही नही थे, किन्तु बडे लडके हरीश की तर्कशील प्रवृत्ति के आगे उनकी कोई बात चल नही पाती। उसके आग्रह पर उन्हे कह देना पडा था—'तुम चाहते हो, तो भले ही दीपक जलाओ, लेकिन दीपक जलाने से ही हमारा वह अन्धकार मिट नही सकता, जिसमे हम भटक रहे है।'

'लेकिन जब घर-घर दीपक जलेगे', हरीश ने तर्क करते हुए कहा था—'और हमारे घर मे अँधेरा रहेगा, तो पास-पडोसवाले क्या कहेगे?'

'यही न कि देवदत्त शर्मा देशद्रोही है।' शर्माजी ने कुछ तिलमिलाते हुए कह दिया था और एक प्रश्नसूचक दृष्टि से हरीश को ध्यानपूर्वक देखने लगे थे।

'नही।' तर्कप्रिय हरीश ने कहा था—'यह तो कोई नही कहेगा—कह नही सकेगा। तुम्हारी पूरे दो युगो की साहित्य-साधना इस बात की साक्षी है कि तुमने राष्ट्रोत्थान की ही सदा कामना की है, गरीबो और श्रमिको को सुख-सुविधाएँ दिए जाने का नारा बुलन्द किया है; किन्तु हवा का रुख देखकर भी तो चलना पडता है, दादा! आज राष्ट्रोल्लास मे सहयोग न देने का गलत अर्थ भी तो लगाया जा सकता है न!'

'तुम ठीक कहते हो, हरीश!' शर्माजी ने कह दिया था—'अवश्य दीपक जलाओ। और हाँ, आठ बजे तक तुम सब जाकर शहर का एक चक्कर भी लगा आना। चौक मे आज रगबिरगी रोशनी होगी। तुम्हारे छोटे भाई और बहिन को आनन्द आएगा वह रोशनी देखकर।'

और, शर्माजी के प्रस्ताव पर इस समय उनका सारा परिवार जब शहर की रोशनी देखने चला गया, तो वह स्वय इस तिमजिली छत पर आकर खडे हो गए। शर्माजी की पत्नी ने बहुत चाहा कि शर्माजी भी उन सबके साथ शहर जाते, किन्तु शर्माजी ने कह दिया था कि उनके एक साहित्यिक मित्र अभी रात मे उनसे भेट करने आ रहे है, अत घर पर उनका रहना आवश्यक है।

शर्माजी की पत्नी समझदार है। पढी-लिखी है। स्वय अच्छी लेखिका और कवयित्री है। अनेक साहित्यिक और सरकारी पुरस्कार उन्हे मिल चुके है। हवा का रुख पहचानने मे वह बडी चतुर है। शर्माजी की इच्छा न देख, उन्होने जोर नही दिया और बच्चो के साथ दीपोत्सव देखने चली गई।

खुली छत पर शर्माजी कभी इधर से उधर टहलने लगते और कभी किसी दीपक के पास खडे होकर आसपास के मकानो पर जगमगानेवाले दीपको की स्निग्ध झाँकी देखने लगते। कभी-कभी बुझते दीपक देखकर उनके अन्त-

राल मे यह ध्वनि गूँज उठती—'धीरे-धीरे सभी दीपक इसी तरह बुझ जायँगे और पुन' घना अँधेरा फैल जाएगा।'

शर्माजी की विचारधारा प्रवाहित होने लगी । उन्हे लगा कि न केवल मिट्टी के ये दीपक बुझ जायँगे, प्रत्युत उन नर-नारियो के जीवन-दीप भी इसी तरह बुझ जायँगे, जो आज यह दीपोत्सव मना रहे है। मिट्टी के दीपक को जलने के लिए जिस स्नेह की आवश्यकता है, वह चुका नही कि सब समाप्त ! इसी तरह मानव के जीवन-दीप को प्रज्वलित रखने के लिए जिस स्नेह की आवश्यकता है, वह पूरा हुआ नही कि सब समाप्त ! और, मानव को जीवित रखने के लिए जिस स्नेह की आवश्यकता है, वह आज उसे मिलता ही कहाँ है ?

जिन अगणित नर-नारियो ने अपना बलिदान देकर देश को स्वतन्त्र किया, उनके ही आत्मीयो और आश्रितो की आज कौन चिन्ता करता है ? माना कि ऐसे कुछ परिवारो को राष्ट्रीय सरकार द्वारा यथोचित आर्थिक सहायता दी जा रही है, परन्तु यह सहायता तो केवल उन लोगो को मिल पाती है, जिनकी पहुँच सत्ताधारियो तक है। अधिकाश व्यक्ति तो सत्ताधीशो तक कभी पहुँच ही नही पाते और तिल-तिलकर समाप्त होते जाते है ।

दूसरो की बात छोडिए, शर्माजी स्वय अपनी बात लेकर कभी-कभी द्रवित हो उठते है । एकमात्र पत्रकारिता का क्षेत्र अपनाकर उन्होने सन् १९३१ ई० के सत्याग्रह आन्दोलन मे अपनी उच्चशिक्षा का विचार सदा के लिए छोड दिया और आज तक राष्ट्रोत्थान के यज्ञ मे अपनी आहुति देने मे कभी कुछ उठा नही रक्खा। इस आहुति का माध्यम उन्होने साहित्य को ही बनाया। लगभग एक दर्जन मौलिक उपन्यास, आधा दर्जन कहानी-सग्रह और कई कविता-सग्रह आदि उन्होने अब तक माँ-भारती के मन्दिर मे अपित कर दिए, परन्तु आज तक उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी नही हो सकी कि अपने रुग्ण आत्मीयो का यथोचित उपचार वह करा सके; सन्तान को भली भाँत शिक्षा दे सके और स्वयं अपनी डेढ पसलियो को मासल बना सकें ।

क्या वह दिन शर्माजी कभी भूल सकते हैं, जब उनका बडा पुत्र हरीश रोग-शय्या पर पडा छटपटा रहा था और शहर के सबसे अधिक विख्यात माने जानेवाले डाक्टर घोष का उपचार कराने के लिए उन्ह अपने दो मौलिक उपन्यासो का कापीराइट केवल पचास-पचास रुपए मे बेच देना पडा था। यह देखकर शर्माजी का हृदय विदीर्ण होने लगता है कि उन्ही उपन्यासो के अब तक तीन-तीन सस्करण हो चुके है, किन्तु शर्माजी को अब एक पाई नही मिलती प्रकाशक की ओर से। मिले भी क्यो? इस दुनिया मे सौदा ही तो सर्वत्र होता है न! सौदे मे सदा स्वार्थ की प्रधानता रहती है। प्रकाशक ने भी सौदा किया था। अब लेखक से उसका क्या नाता?

परन्तु दिन सदा एक से नही रहते। कालचक्र सदा अपनी गति से घमता रहता है। शर्माजी के भी वह दिन बीत गए। जहाँ एक उपन्यास का कापीराइट उन्हे केवल पचास रुपए पर बेचना पडा था, वहाँ अब एक-एक कहानी और लेख पर उन्हे साठ रुपए तक पारिश्रमिक मिलने लगा है। परन्तु पारिश्रमिक मे जहाँ यह वृद्धि हुई, वहाँ उनका परिवार भी फला-फूला और उनकी आवश्यकताएँ भी बढ गईं। परिणाम यह हुआ कि आज भी शर्माजी के जीवन मे सघर्ष और परेशानियाँ ही व्याप्त है।

यही कारण है कि दीपोत्सव मनाने की बात जब हरीश ने कही थी, तब शर्माजी ने कह दिया था कि दीपक जलाने से ही हमारा वह अन्धकार मिट नही सकता, जिसमे हम भटक रहे है। और, अपने अन्तस्तल मे दबे इसी विक्षोभ के कारण शर्माजी अपने परिवार के साथ रोशनी देखने नही गए। मित्र के आने की जो बात उन्होने कह दी थी, वह तो समझदार पत्नी को चुप करने का एक बहाना मात्र था।

शर्माजी अपनी छत पर टहलते रहे और उनके मानस मे अनेक विचार-तरगे उठती-गिरती रही। अब देश स्वतत्र हुआ है, तो उसके कलाकारो को भी जीवन की सुविधाएँ प्राप्त होगी। राष्ट्रीय सरकार अपने देश के साहित्य-

साधको की सम्मान-रक्षा का अवश्य ध्यान रखेगी। यह सरकार अपने कलाकारो को भूखो न मरने देगी; उन्हे यह अनुभव न होने देगी कि जिस साहित्य के माध्यम से गान्धी और जवाहर, रवीन्द्र और प्रेमचन्द जैसे व्यक्तित्त्व उत्पन्न होकर विश्वव्यापी कीर्त्ति के केन्द्र बन सकते है, उस साहित्य के साधक दयनीय हो सकते है।

परन्तु दूसरे ही क्षण शर्माजी के विचारो ने पलटा खाया। उन्हे लगा कि सरकार कोई भी हो—अपनी हो या विरानी—शासन के मद से मुक्त नही हो सकती। सरकार से कोई आशा करना रेत से तेल निकालना है। फिर, अपने आश्रित ही जब हमारी उचित सेवा-शुश्रूषा नही करते और हमारी सुख-सुविधा अथवा सन्तोष की चिन्ता नही करते, तब इस दुनिया मे दूसरो से क्या आशा की जाए!

छत पर टहलते-टहलते शर्माजी इस विचार के उठते ही ठिठककर खडे हो गए। अपने-आप उन्ह धीमी-सी हँसी आ गई। आशा? हम किसी से कोई आशा करे ही क्यो? निराश होने पर यही आशा हमे दुखी कर देती है, हमारी मानसिक शान्ति का अपहरण कर लेती है और प्रकारान्तर मे हमारे जीवन की अवधि को भी कम कर देती है। लेकिन दुनिया मे रहकर हम कितनी ही चेष्टा क्यो न करे, आशा का मृगजल हमे भ्रमित कर ही देता है।

कितने ही ऐसे अवसर शर्माजी के जीवन मे आ चुके है, जब उन्हे अपने परिवार से घोर निराशा हाथ लगी है। एक तपस्वी की भाँति शर्माजी ने अपना सर्वस्व जिस परिवार के लिए होम दिया, उसी परिवार से यदि वह किसी सुख-सुविधा और शान्ति की आशा करते है, तो इसे अस्वाभाविक कैसे कहा जाए? लेकिन इस दशा मे शर्माजी स्वीकार करते कि आशा करने की बात तो साधारण मानव पर ही लागू होती है न! तपस्वी की भाँति यदि उन्होने सर्वस्व होम दिया है, तो तपस्वी की भाँति उन्हे इस आशा के मृगजल से अब सावधान भी रहना होगा।

इन्ही विचार-धाराओ पर जब शर्माजी तिर रहे थे, तभी नीचे के सदर

दरवाजे पर किसी ने कुण्डी खटखटाई। एक क्षण के लिए शर्माजी को लगा कि अरे, इस वक्त कौन कुण्डी खटखटा रहा है ? श्रीमतीजी से जिस मित्र के आने का बहाना उन्होने बना दिया था, क्या वही अज्ञात मित्र आ टपके ? कोई भी हो, दरवाजा तो खोलना ही होगा।

शर्माजी नीचे गए। दरवाजा खोलकर देखा, तो शैलेन्द्र को खडा पाकर उन्होने कहा—'आओ भाई ! कैसे भटक पडे ?'

भटक पडने की बात शर्माजी ने ठीक ही कही थी। यह शैलेन्द्र हिन्दी का एक प्रख्यात कथाकार है, किन्तु इसका व्यक्तित्त्व सभी के लिए एक पहेली है। वह क्या करता है, कैसे अपना खर्च चलाता है, किसी को ज्ञात नही। कहानियाँ लिखता है, यह तो सभी जानते है; किन्तु पत्र-पत्रिकाओ मे प्रतिमास दो-एक कहानियाँ प्रकाशित हो जाने पर किस कथाकार का खर्च चल सकता है ? कम-से-कम भारत मे और हिन्दी कथाकार-जैसे मसिजीवी का पारिवारिक खर्च पूरा हो सकना अब तक तो आकाश-कुसुम ही है। कदा-चित् इसीलिए कुछ लोगो का अनुमान है कि शैलेन्द्र एक राजनीतिक पार्टी का गुप्त कार्यकर्त्ता है और पार्टी की ओर से उसे पर्याप्त रकम मिलती रहती है। यदि ऐसा न हो, तो शहर का खर्च चलाना सम्भव नही। फिर यह शैलेन्द्र बहुत ही कम शर्माजी से मिलता-जुलता है। शर्माजी 'त्रिवेणी' मासिक पत्रिका के सम्पादक है, अत शैलेन्द्र कभी-कभी उन्हे कोई कहानी दे जाता है, अथवा कभी राह चलते दर्शन हो गए, तो नमस्कार कर लिया करता है। इसीलिए शैलेन्द्र को इस समय अपने दरवाजे पर देखते ही 'भटक पडने' की बात उनके मुँह से निकल पडी।

'दीपोत्सव देखने चौक जा रहा था।' शैलेन्द्र ने कहा—'सोचा, आपसे भेट करता चलूँ। सन्देह था कि इस समय आप घर मे होगे; किन्तु दरवाजा भीतर से बन्द देख, कुण्डी खटखटा देना ही मैने ठीक समझा।'

'और मै मिल भी गया।' शर्माजी ने शैलेन्द्र के साथ बाहरी बैठक मे प्रवेश करते हुए कहा—'बैठिए।'

शैलेन्द्र एक कुर्सी पर बैठते हुए बोला—'एक बात बहुत दिनो से आपसे कहने का इरादा है, परन्तु कभी कह नही सका।'

'तो आज कह डालिए।'

'हॉ, आज गणतत्र-दिवस के जन्मोत्सव की मगल वेला मे मुझे अपनी वह बात अवश्य कह देनी चाहिए।' शैलेन्द्र ने कुछ गम्भीर होते हुए कहा—'देख रहा हूँ, आप सदा आर्थिक सकट के शिकार रहते है। आपके परिवार मे डाक्टरी उपचार भी सदा चलता रहता है। क्या किया जाय, आजकल पौष्टिक पदार्थ तो मध्यम वर्ग जुटा नही पाता, फिर बीमारियॉ क्यो न आक्रमण करेगी ? इनसे छुटकारा नही।'

'यह तो हम हिन्दी-सेवियो के भाग्य की बात है।' शर्माजी ने कहा—'लेकिन इससे मुक्ति कहॉ ? हॉ, आशा की एक किरण मेरे सामने है, जिसे देख-देखकर सारे सकटो का सामना किए जा रहा हूँ। बडा लडका हरीश इटर मे पढ रहा है। ईश्वर अनुकूल रहा तो चार-पॉच बरस मे वह पी० सी० एस० हो जाएगा। तब सभव है, मेरे सकटो की समाप्ति हो जाए।'

'बुरा न मानिए, शर्माजी !' शैलेन्द्र ने रुक्षता के साथ कहा—'आजकल विश्वविद्यालयो मे जाते ही लडके मॉ-बाप को कुछ नही समझते। शायद ही पॉच प्रतिशत लडके ऐसे निकलते हो, जो अपने मॉ-बाप के प्रति सच्चे अर्थो मे कर्त्तव्यपरायण रह सकते हो। ऐसी दशा मे लडके का सहारा देखना मृगजल ही समझिए। स्वय अपने हाथ-पैरो का सहारा लीजिए, स्वय अपने सकट दूर करने का प्रयत्न कीजिए।' फिर एक क्षण रुककर शैलेन्द्र ने लक्ष्यबेध करते हुए कहा—'सकटो से मुक्ति का उपाय भी है। दो युगो की साहित्यिक तपस्या का फल तो आप देख ही रहे है ! इतना वेतन भी तो आपको नही मिलता कि घर-खर्च बराबर चला सके। इधर मुझे देखिए, चैन से जिन्दगी बिता रहा हूँ।'

शैलेन्द्र की ये बाते तीखे तीरो की तरह शर्माजी के हृदय को बेध

बैठी। बडे पुत्र हरीश के सबध मे भी शैलेन्द्र ने परोक्ष रूप से जो कुछ कहा, वह शर्माजी को बडा अप्रिय लगा। तिलमिलाकर उन्होने कहा—'लेकिन आपके सबध मे लोगो की क्या धारणा है, इसे आप जानते है या नही ?'

'जानता क्यो नही।' शैलेन्द्र ने कहा—'यही न कि मै एक विशेष राजनीतिक दल का कार्यकर्त्ता हूँ। लेकिन मुझे इसकी चिन्ता नही। कीडो-मकोडो की तरह जिन्दगी बिताने से, यह कही अच्छा है कि हम किसी पार्टी को अपनाकर चैन से रहे।'

'बस कीजिए, शैलेन्द्रजी!' शर्माजी ने उत्तेजित होकर कहा—'मै अपनी ईमानदारी पर बट्टा नही लगा सकता। देश के प्रति विश्वासघात नही कर सकता।'

'तो क्या मै देश के प्रति विश्वासघात कर रहा हूँ, शर्माजी ?'

'अवश्य!' शर्माजी ने कुर्सी से खडे होते हुए कहा—'मतभेद हो सकता है। तर्क भी अनेक किए जा सकते है, किन्तु मै तर्कप्रिय नही हूँ। तर्क करने की बीमारी हमारे देश के तरुणो मे बुरी तरह फैल रही है। और, यह तर्क बहुधा तर्क न होकर कुतर्क ही होता है। मेरा बडा लडका हरीश भी बडा कुतर्की है, और मै जानता हूँ, यह कुतर्क ही उसे कभी ले डूबेगा। अच्छा, इस समय क्षमा कीजिए।'

'प्रमाणपत्र तो आपने आज बहुत बुरा दे डाला है, शर्माजी!' शैलेन्द्र ने भी कुर्सी से खडे होते हुए कहा—'लेकिन आप मुझसे बडे है, इसलिए मै आपकी बात का बुरा नही मानता। इतना अवश्य कहूँगा कि कभी आवश्यकता समझे, तो मेरे प्रस्ताव पर गभीरता से विचार अवश्य करे।' और नमस्कार कर शैलेन्द्र चला गया।

शर्माजी ने सदर दरवाजा बन्द कर दिया और पुन छत पर चले गए। उन्हे लगा कि शैलेन्द्र सचमुच अद्भुत व्यक्ति है। मैने उसे देश के प्रति विश्वासघाती तक कह दिया, फिर भी वह अपनी पार्टी का ध्यान रखते हुए भभका नही! कह रहा था कि मेरी बात का वह बुरा नही मानता, लेकिन

उसके प्रस्ताव पर मै गभीरतापूर्वक विचार अवश्य करूँ। लेकिन जीवन के इस चौथे चरण मे क्या अपने सिद्धान्तो की हत्या मै इस प्रकार कर भी सकूँगा ?

हुँ ! देश के प्रति विश्वासघाती बनने के किसी प्रस्ताव पर विचार करने से पूर्व, मै इस दुनिया से ही उठ जाना अच्छा समझूँगा ।

कुछ ही देर के बाद फिर बाहरी दरवाजे पर किसी ने कुण्डी खटखटाई। बडी खीझ के साथ उन्होने जाकर दरवाजा खोला। देखा तो श्रीमतीजी बच्चो के साथ दीपोत्सव देखकर लौट आई थी।

—४—

दरवाजे पर मोटर का हार्न सुनते ही नलिनी अभूतपूर्व उत्सुकता से भर उठी। बैठकखाने मे जिस कोच पर वह बैठी थी, उससे उछलते हुए, सामने बैठे अपने पति—नागर—से बोली—'लो, सुमित्रा बहिन आ गई।' और वह तेज कदमो से बरामदे मे जा पहुँची।

कार से उतरकर सुमित्रा बरामदे की ओर अपने पग बढा ही रही थी कि श्रीमती नागर—नलिनी—ने आगे बढकर उसका स्वागत किया—'आओ बहिन!' और उसका एक हाथ अपने हाथ मे दबाकर, बैठकखाने की तरफ बढते हुए कहा—'कब से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है हम लोग!'

अब तक दोनो बैठकखाने मे पहुँच चुकी थी। नागर ने भी खडे होकर सुमित्रा का स्वागत करते हुए कहा—'आइए, आचार्या सुमित्राजी! जय हिन्द!'

मुसकराते हुए सुमित्रा ने दोनो हाथ जोडकर कहा—'जय हिन्द।' और नलिनी के साथ ही एक सोफे पर बैठते हुए बोली—'देर के लिए क्षमा चाहती हूँ। क्या करूँ, आज तो टेलीफोन ने मेरा नाक मे दम कर दिया। डिप्टी कलैक्टर सिनहा की पुत्री रजनी का भी आग्रह है कि मै आपके यहाँ से सीधी उसके घर जाऊँ। रजनी की माताजी ने भी स्वय फोन पर आग्रह किया है।'

'आज का दिन ही ऐसा है, सुमित्राजी!' नलिनी ने कहा—'भारतीय प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव की मगल वेला मे भारत के जन-जन का उल्लास फूटा पड रहा है। सभी लोग अपने-अपने आत्मीयो के साथ यह उल्लास मनाना चाहते है।'

'कुछ अशो मे आपकी बात ठीक है।' सुमित्रा की दार्शनिक नारी ने कहा—प्रजातत्र की मगल वेला मे भारत के जन-जन को उल्लास मनाना ही चाहिए। परन्तु सम्पन्न वर्ग को छोडकर उस दीन-हीन वर्ग की ओर भी आपने देखा है, जो अब तक पूँजीवाद की चक्की के पाटो के बीच बुरी तरह पीसा जा रहा है? क्या वह शोषित-पीडित वर्ग भी उसी तरह उल्लास मना रहा है, जिस प्रकार हम और आप तथा शहरो का सम्पन्न वर्ग मना रहा है?'

'दो वर्गों का नाम लेना आप भूल गई, सुमित्राजी!" नागर ने कदाचित् विद्रूप के स्वर मे कहा—'एक शरणार्थी और दूसरा कम्युनिस्ट वर्ग!'

'शरणार्थियो का जहाँ तक सबध है, निश्चय ही वह दीन-हीन वर्ग मे गिने जाने योग्य हे।' सुमित्रा ने कोच से टिकते हुए कहा—'परन्तु कम्युनिस्ट वर्ग को मै इस श्रेणी से बहुत दूर समझती हूँ। कम्युनिस्ट तो किसी दूसरी ही भावना के शिकार है। यह कहना अधिक उचित होगा कि वे प्रजातन्त्र के ही विरोधी है।'

'मै तुमसे एकदम सहमत हूँ।' नलिनी ने कहा—'जिस दीन-हीन वर्ग की बात तुम कर रही हो, उसीमे शरणार्थी गिने जाएँगे। परन्तु कम्युनिस्ट-वर्ग को दीन-हीन कहना सरासर इन शब्दो का दुरुपयोग करना है।'

नागर ने अपनी गलती स्वीकार कर ली, कहा—'कभी-कभी भावावेश मे गलती हो ही जाती है। मै अपने शब्द वापस लेता हूँ।' फिर एक क्षण मौन रहकर नागर ने कहा—'लेकिन स्वतत्र होते ही, सभी वर्गों को समान रूप से प्रसन्न कर सकना सम्भव नही था। हमारी अपनी सरकार धीरे-धीरे ही सबकी सुविधाओ के साधन प्रस्तुत कर सकेगी। किसानो को ज़मीदारो के जाल से, देशी राज्यो की प्रजा को राजा-महाराजाओ के जाल से और श्रमिक वर्ग को पूँजोपतियो के जाल से मुक्त करने का प्रयत्न हमारी राष्ट्रीय सरकार कर ही रही है। नवीन विधान बनाकर समाज के प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्र और सुखी करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है। परन्तु

धीरे-धीरे ही सफलता हाथ लग सकेगी। क्या विचार है आपका, सुमित्राजी ?'

'मै इन सफलताओं मे सन्देह नही करती।' सुमित्रा ने कहा—'परन्तु मानव की प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति पर हमारी सरकार को तत्काल ध्यान देना था। भोजन, वस्त्र और मकान की पूर्ति करना अपनी सरकार का पहला कर्त्तव्य होना चाहिए था। जब तक सर्वसाधारण को ये सुविधाएँ नही मिल जाती, देश के स्वतन्त्र हो जाने अथवा प्रजातत्र हो जाने का अर्थ जन-साधारण की समझ मे नही आ सकता।'

'तुम ठीक कह रही हो, बहिन !' नलिनी ने गम्भीर होते हुए कहा—'जिस कांग्रेस के इंगित पर भारतीय जनता बिना किसी हिचकिचाहट के जेलो मे गई, लाठियो और बन्दूको की गोलियो की बौछारे उसने अपने सीने पर झेली और अगणित बलिदान दिए, आज उसी कांग्रेस के प्रति जनता का मन बदल रहा है। उसे लगता है कि वही कांग्रेस अब पदारूढ होकर जनता को शायद भूलने लगी है। और, जनता की यह धारणा केवल इसलिए बदल रही है कि उसे भोजन, वस्त्र और मकान की सुविधाएँ भी तो नही मिल रही है। अपनी और परायी सरकार का भेद आखिर जनता समझे कैसे ?'

इन दो बौद्धिक नारियो के इस सीधे-सादे तर्क के सामने नागर ने स्वय को पराभूत अनुभव किया। नागर के पास केवल एक ही उत्तर था, और वह यही कि धीरे-धीरे ही जनता अपनी सरकार के लाभ समझ सकेगी। परन्तु जिस तात्कालिक सुधार की बात सुमित्रा और नलिनी दोनो कह रही है, उसे भी अस्वीकार नही किया जा सकता।

नागर ने दबी वाणी मे कहा—'तुम्हारा तर्क भी ठीक है, नलिनी ! परन्तु राजदण्ड जिनके हाथो मे है, उनकी विवशताओ का ध्यान भी हमे रखना होगा। २६ जनवरी १९५० को आज हमने भारतीय गणतन्त्र की स्थापना की है। परन्तु इस तिथि को छूनेवाले विगत तीन वर्षों मे जो घटनाएँ घट चुकी है, वे युगो का निर्माण करनेवाली है। उन तीन वर्षों

मे जो लोमहर्षण काण्ड हुए, वे मानव-इतिहास मे अभूतपूर्व कहे जाएँगे। एक महान् साम्राज्य का अस्त हुआ, भारत स्वतन्त्र हुआ और खण्डित भी। इस विभाजन के फलस्वरूप रोमाचकारी साम्प्रदायिक रक्तपात हुआ —लाखो नर-नारी गृहहीन हो गए। और, इसी बीच राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी की हत्या हुई, जिससे सारा भारत विषाद और अवसाद के सागर मे डूब गया। और, आज भी हमारे चारो ओर सामाजिक व्यवहार मे स्थिरता नही है। अभूतपूर्व और अकल्पित निर्मम आघातो से हमारे देशवासी मूर्च्छित-से है, विक्षुब्ध है और निष्क्रिय क्रोधाग्नि से जल रहे है। उनका विवेक काम नही कर रहा है। ऐसी असाधारण स्थिति मे शासन-सुधार और सुविधा-सफलता की बाते करना प्रलाप ही कहा जाएगा न!'

'इसे आप प्रलाप कहे अथवा आलाप, जीजाजी!' सुमित्रा अपनी सहेली नलिनी के नाते श्री नागर को कभी-कभी जीजा कह बैठती थी—'लेकिन जनता को सैद्धान्तिक बाते कठिनाई से ही समझ मे आती है। वह तो अपने दैनिक जीवन की कठिनाइयो का हल पहले चाहती है।'

'लेकिन जो समझदार है और प्रबुद्ध है, उनका कर्त्तव्य हो जाता है कि अपने अनजान देशवासियो को यह समझाने का प्रयत्न करे कि प्रजातन्त्र मे उन्नति की गति मन्द होती है। परन्तु प्रजातन्त्र द्वारा की गई उन्नति सदा ठोस होती है और राष्ट्र की स्थायी सम्पत्ति होती है। प्रजातन्त्र की पद्धतियो से परिचित होकर जनता इस प्रगति को तेज कर सकती है। यदि अतृप्त आशाओ से उत्पन्न मनोविकारो को सयत न रक्खा गया, तो वे इस प्रगति मे बाधक हो सकते है। इन मनोविकारो का सयम प्रजातन्त्र की सफलता के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस सयम को स्वेच्छा से ग्रहण करके ही जन-साधारण उस राजनैतिक प्रौढता को प्राप्त कर सकता है, जिसकी राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन के लिए तत्काल आवश्यकता है।'

'छोडिए भी इस वाद-विवाद को!' नलिनी ने कदाचित् इस राजनीतिक चर्चा से ऊबते हुए कहा—'क्या सुमित्रा बहिन को इसीलिए इतनी रात मे

यहाँ बुलाया है कि उनका दिमाग खाली किया जाए ?' और एक प्रश्नसूचक दृष्टि से अपने पति नागर की ओर देखते हुए नलिनी ने इस प्रसग को मानो समाप्त कर देने का आग्रह किया।

'सचमुच भूल हुई!' नागर ने मुसकराते हुए कहा—'सुमित्राजी, आप मुझे इस रूखी राजनीतिक चर्चा के लिए क्षमा करे।'

'नही, ऐसी कोई बात नही!' सुमित्रा ने कहा—'आज भारत के जन-जन का सम्बन्ध जिस चर्चा से हो, उसे रुक्ष कहकर टाल देना मै ठीक नही समझती। हॉ, यह बात अवश्य है कि आज—इस समय, इतनी रात बीते—इस सम्बन्ध मे अधिक तर्क करने की स्थिति मे नही हूँ मै।'

और ठीक इसी समय बैठकखाने के भीतरी दरवाजे पर लटकते रगीन पर्दे को हटाकर लता ने प्रवेश करते हुए कहा—'मै तो इस चर्चा से कब की ऊब चुकी हूँ। लेकिन दादा के भय से बीच मे आने और कुछ कहने का साहस नही हुआ।'

नलिनी ने कोच से खडे होकर लता के सिर पर अपना एक हाथ फेरते हुए कहा—'लता बेटी बडी रानी है! अपने पिता का कितना ध्यान रखती है। अच्छा बेटी, चाय-नाश्ता तैयार करा चुकी या नही ?'

'मैने कहा न, कब से मै यही बाट जोह रही हूँ कि आप लोगो की यह बहस बन्द हो, तो मै आचार्याजी को भीतर ले चलूँ!'

सुमित्रा ने भी कोच से उठकर लता की एक हथेली को सस्नेह चूमते हुए कहा—'तुम अपने दादा को इतना डरती हो, बेटी! बीच मे ही आ जाती मुझे बुलाने।' और लता के सिर पर स्नेह से अपना हाथ फेरने लगी। फिर एक क्षण के बाद कहा—'अच्छा है बेटी, बडो की मर्यादा का सदा ऐसा ही ध्यान रखना। चलो, हम सब भीतर चले।'

भीतरी कमरे मे पैर रखते ही सुमित्रा को यह देख आश्चर्य हुआ कि लता की कई सहेलियाँ, खादी की दूध-सी सफेद साडियाँ पहने हुए, एक गोल-

मेज के आसपास उसके स्वागतार्थ खडी है। सुमित्रा के आश्चर्य का कारण इन कुमारियो की उपस्थिति नही, बल्कि यह था कि इतनी कुमारियाँ किसी चाय-पार्टी के सिलसिले मे एकत्र हो और कोई शोरगुल न हो! कितनी देर से सुमित्रा बगल के बैठकखाने मे नागर और नलिनी से बातचीत कर रही थी, परन्तु इस बीच उसे ऐसी कोई भनक भी नही सुनाई पडी, जो इन कुमारियो की उपस्थिति की सूचना कही जा सकती! कितना अनुशासन है इन कुमारियो मे, कितना धैर्य!

'तो यह कहो, लता!' सुमित्रा ने एक क्षण मौन रहने के बाद पूछा—'कि आज तुमने मुझे चाय पीने का आमन्त्रण देकर अन्य किसी विशेष आयोजन की रूपरेखा तैयार कर रक्खी है।'

'लता का कहना है', लता की माँ नलिनी ने सुमित्रा की बात का उत्तर देते हुए कहा—'कि तुम्हे बुलाकर केवल चाय पिलाने का आज कोई अर्थ नही। चाय तो तुम चाहे जब इस घर मे पी लेती हो।'

'हाँ, मैने सोचा', यह लता की वाणी थी—'आज प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव पर देशवासी तरह-तरह का उल्लास मना रहे है, इसलिए हम सहेलियाँ भी अपनी आचार्याजी को आमन्त्रित कर विशेष रूप से ही अपना उल्लास व्यक्त करे।'

'आखिर इस उल्लास का रूप-रङ्ग भी जान सकती हूँ?' सुमित्रा ने जिज्ञासा प्रकट की।

'पहले चाय नाश्ता, तब कुछ और!' नलिनी ने कहा, फिर हरिणी की तरह चौकते हुए बोली—'अरे, तुम अब तक खडी हो! बैठो तो सही।' और महाराजिन को आवाज देते हुए कहा—'चम्पा, चाय लाओ।'

कमरे के पश्चिमी दरवाज़े पर लटकते पर्दे मे कुछ हरकत हुई और एक अधेड-सी गौराग नारी ने चाय का ट्रे हाथ मे सँभाले हुए प्रवेश किया।

गोल मेज पर रक्खे प्यालो मे चम्पा चाय उडेलने लगी, और उसके साथ

ही लता अपनी एक सहेली के साथ दो-दो तश्तरियाँ प्रत्येक के पास रखने लगी। एक तश्तरी मे मिठाइयाँ और दूसरी मे तले हुए नमकीन मेवे तथा फल थे।

बात-की-बात मे चाय-नाश्ते की तैयारी कर दी गई और नागर ने कहा—'प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव की मगल वेला मे हम चाय-पान करे!'

'भारतीय गणतत्र चिरजीवी हो!' लता ने मधुर स्वर मे कहा, और सबने चाय-पान प्रारम्भ किया।

चाय-पार्टी समाप्त होते ही लता अपनी सहेलियो के साथ उस कमरे से सहन की तरफ जाते-जाते सुमित्रा से कह गई—' अब आप हम सहेलियो के आयोजन का रूप-रङ्ग शीघ्र ही देखेगी। मै अभी आती हूँ।'

सुमित्रा ने नलिनी की ओर देखते हुए कहा—'क्या कर रही है यह लता? मै तो कुछ समझ ही नही सकी अब तक।'

'सब समझ जाएँगी।' नागर ने कहा—' सहन मे चलकर अभी आप स्वय देख लेगी कि लता अपनी सहेलियो के साथ क्या कर रही है।'

'और यही तो कारण था', नलिनी कहने लगी—'कि तुम्हे बुलाने पर हम लोग इतना जोर दे रहे थे।'

'क्यो न हो!' सुमित्रा ने कहा—' आखिर सदियो के बाद हमारे देश मे प्रजातत्र की स्थापना हुई है न! इन बालिकाओ मे भी उल्लास का फूट पडना स्वाभाविक है।'

इसी तरह की बातचीत चल रही थी कि लता ने आकर सुमित्रा से सहन मे चलने का अनुरोध किया।

नागर, नलिनी और सुमित्रा तीनो लता के साथ सहन की तरफ चल पडे।

—५—

सहन में जाकर सुमित्रा ने देखा कि एक छोटा-सा रङ्गमच तैयार किया गया है, और वहाँ लटकते हुए रगीन पर्दे किसी नाटक के अभिनय की पूर्व सूचना दे रहे हैं। सहन मे चारो ओर बिजली के रङ्गीन लट्टू लटक रहे ह, जिनका स्निग्ध प्रकाश वहाँ के अणु-परमाणु को पुलकित कर रहा है।

सामने लटकते पर्दे पर दिवगत राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी का एक भव्य चित्र अकित था, जिनका वर॰ हस्त स्वर्ग से भारत मा ा पर पुष्प-वर्षा कर रहा था। गण॰न्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति ड॰० राजेन्द्रप्रसाद भारत माता की आरती उतार रहे थे और प्रधान मन्त्री पडित जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य राष्ट्री; नेता शख-ध्वनि कर रहे थे।

सुमित्रा इस चित्र को त लीनता के साथ देखती रही। वह शायद कुछ देर तक इसी तरह ध्यानावस्थित रहती कि नलिनी ने उसे टोक दिया—'बैठिए सुमित्राजी! कुछ अन्य परिचित भी आ रहे होगे। साढे दस बजे का समय दिया गया है। बस, पन्द्रह मिनट मे आते ही होगे वे लोग।'

प्रकृतिस्। होते हुए सुमित्रा ने कहा—'इन कुमारियो का उत्साह और उल्लास प्रशसनीय है, बहिन! बहुत सुन्दर और भावपूर्ण है यह चित्र!' फिर मानो नलिनी की बात का उत्तर देते हुए उसने कहा—'कुछ अन्य परिचितो के आने की कल्पना मै पहले ही कर चुकी थी। इतने कोच और कुर्सियाँ यह सूचना दे रही है कि दर्शको की सख्या केवल हम लोगो तक ही सीमित नही रहेगी।'

'तो क्या तुम अन्य दर्शको के साथ यहाँ ठहरना ?'

'नही–नही ।' सुमित्रा ने नलिनी की आशका को तत्काल भाँपते हुए कहा—'मेरा मतलब आप नही समझ सकी, बहिन ! मुझे भला, आपके परिचितो के साथ ठहरने, बातचीत करने अथवा किसी उत्सव मे भाग लेने मे कोई आपत्ति क्यो होगी ?'

'एक बात और है, सुमित्राजी !' नागर ने वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा—'जिन लोगो को आमन्त्रित किया गया है, वे हमारे महिला विद्यालय के शुभचिन्तक ही है । और, प्राय सबके सब अपनी पत्नियो के साथ आएँगे ।'

इसी बीच नौकर ने आकर खबर दी कि दो-तीन मोटरे आकर दरवाजे पर खडी है ।

'वह देखिए, आमन्त्रित सज्जन आने लगे ।' नागर ने सुमित्रा से कहा—'अच्छा, आप बैठिए । मै आगन्तुको का स्वागत करने जा रहा हूँ ।' और नागर लपकते हुए बाहर चले गए ।

'नागर जीजा भी कभी-कभी अजीब बात करने लगते है , नलिनी जीजी !' सुमित्रा ने एकान्त पाकर कहा—'कह रहे थे, प्राय सभी आमन्त्रित सज्जन अपनी पत्नियो के साथ आएँगे । मानो मै पुरुषो से छडकती हूँ ।' और एक मुसकराहट नाच गई उसके ओठो पर ।

'तुम पुरुषो से छडकती हो अथवा उन पर रीझती हो, यह तो उन्हे मालूम नही ।' नलिनी ने धीमी वाणी मे सुमित्रा की एक हथेली को अपने दोनो हाथो से दबाते हुए कहा—'परन्तु तुम कुमारी हो और मेरी छोटी बहिन के समान हो, इसलिए उन्हे तुम्हारी कुमारी-सुलभ लज्जा और मर्यादा का ध्यान रखना ही पडता है ।'

'लेकिन तुम भूल रही हो, बहिन !' नलिनी की ओर अपने पलक उठाते हुए सुमित्रा ने कहा—'आचार्या होकर मुझे कितने ही पुरुषो से प्राय. नित्य

ही बातचीत करनी पडती है, और कुमारी-सुलभ लज्जा तथा मर्यादा की सीमाओ का उल्लघन करना पडता है।'

'लेकिन महिला विद्यालय और घर की सीमाओ मे बडा अन्तर है, सुमित्रा !' नलिनी शायद इस सबध मे कुछ और कहना चाहती थी कि तभी नागर के कहकहो ने उसका ध्यान बटा लिया। आगतुको के साथ नागर सहन की अ.र आ रहे थे।

आगन्तुको मे प्राय सभी पुरुष सप.नीक थे। सुमित्रा से मिलकर इन सबने प्रसन्नता प्रकट की और यथास्थान बैठ गए। नागरजी इन सबको बैठाकर पुन बाहर चले गए। दूसरे लोगो का भी उन्हे स्वागत करना था।

पन्द्रह-बीस मिनट मे ही सहन मे रक्खे हुए कोच और कुर्सियाँ भर गई। मुश्किल से चार-पॉच कुर्सियॉ बच रही। सुमित्रा ने यह देख, नलिनी से पूछा—'अभी कुछ आमत्रित सज्जन और आएँगे शायद ?'

'अब केवल दो सज्जन और आनेवाले है। एक है श्री प्रफुल्ल घोष, जो कलकत्ते मे बहुधा रहते है और परसो ही यहॉ आए है। तुम्हारे जीजा के शुभचिन्तक है। दूसरे है प० देवदत्त शर्मा, जो 'त्रिवेणी' के सम्पादक और हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्यासकार है।'

'शर्माजी के नाम से मै अच्छी तरह परिचित हूँ, जीजी ! उनके कई उपन्यास पढ चुकी हूँ और 'त्रिवेणी' भी बराबर पढती हूँ। अच्छा है, आज उनके दर्शन भी कर लूँगी। लेकिन प्रफुल्लजी को मै नही जानती।'

'आज उन्हे भी जान लोगी, सुमित्रा ! उनका घर यही प्रयाग मे है, लेकिन कलकत्ते मे व्यवसाय करते है। बीच-बीच मे यहॉ आते रहते है। ये दोनो ही सज्जन समय के बडे पाबन्द है। बस, अब आते ही होगे।'

इसी बीच सहन से उठकर नागरजी फिर बाहर की तरफ चले गए। नलिनी ने यह देखते ही सुमित्रा से कहा—'वह देखो, तुम्हारे जीजा अब इन्ही घोष साहब और शर्माजी की प्रतीक्षा मे बाहर जा रहे है।' फिर एक

क्षण रुककर कहा—'अच्छा, मैं मच पर जाकर लता को सबके आने की सूचना दे आऊँ।' और अपने कोच से उठकर वह मच की ओर चली गई।

इसी बीच नागरजी दो आगन्तुको के साथ सहन मे आ पहुँचे। सुमित्रा को यह समझते देर न लगी कि यही आगन्तुक प्रफुल्लजी और देवदत्तजी है। यह देख सुमित्रा को आश्चर्य हुआ कि नागर के साथ दोनो आगन्तुक उसीके समक्ष आ खडे हुए।

अभिवादन कर प्रफुल्ल घोष ने कहा—'आज आपके दर्शन कर बडी प्रसन्नता हुई, आचार्याजी! मेरी दो छोटी बहिने आपके विद्यालय मे पढती है—कजला और रेणुका। दोनो आपकी प्रशसा करती है।'

'लेकिन मेरी पुत्री लज्जा अभी इतनी छोटी है कि आपके विद्यालय मे नही पढती। इस दशा मे मै अपने परिचय की शृखला जोडने मे असमर्थ हूँ, आचार्याजी!' शर्माजी ने मुसकराते हुए कहा।

सुमित्रा इन दोनो के स्वागतार्थ पहले ही खडी हो चुकी थी और अभिवादन भी कर चुकी थी। अब उसने कहा—'मै भला, किस योग्य हूँ, घोष साहब! यह सब आपकी महानता है।' फिर शर्माजी की ओर देखते हुए बोली—'और आप के उपन्यास तथा 'त्रिवेणी' पढनेवाली पाठिका तो आज आपके दर्शन कर स्वय को धन्य समझती है, शर्माजी!'

'महानता और क्षुद्रता तो ससार मे सर्वत्र है, आचार्याजी!' प्रफुल्ल घोष ने कहा—'परन्तु हमे इनमे से क्या हाथ लगती है, यह हमारे ही गुण-दुर्गुण पर निर्भर करता है। आप बैठिए। फिर कभी आपसे मिलने की चेष्टा करूँगा।'

'प्रथम सभाषण मे ही आपकी शालीनता का प्रतिबिम्ब देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई, सुमित्राजी! अच्छा, आप बैठिए।' शर्माजी ने कहा और प्रफुल्लजी के साथ निकट ही पडी कुर्सियो पर जाकर वह बैठ गए। नागर भी वही एक कुर्सी पर बैठ गए।

नलिनी इस समय तक मच से लौटकर दर्शको के बीच आ चुकी थी। शर्मा-

जी और प्रफुल्लजी को देखते ही उसने दोनो हाथ जोडकर अभिवादन किया और सुमित्रा के साथ कोच पर बैठ गई।

नालिनी इधर कोच पर बैठी नही कि सामने मच पर एक घण्टी टनटना उठी और घण्टी की टनटनाहट के साथ ही धीरे-धीरे मच का पर्दा उठने लगा।

वाद्ययन्त्रो के मनोमोहक स्वरो के उतार-चढाव के साथ दर्शको ने देखा कि एक कुमारी भारत माता के रूप मे उच्चासन पर आसीन है और एक दूसरी कुमारी घी के सात जलते दीपक एक रजत थाल मे लेकर भारत-माता की आरती उतार रही है। उनके आसपास सात कुमारियाँ इस मगल-वेला मे गरवा नृत्य द्वारा अपना उल्लास प्रकट कर रही है।

कुमारियो का गरवा नृत्य बहुत ही आकर्षक और मनोरम था। यह कलात्मक नृत्य देखकर दर्शक आत्मविभोर हो उठे। इसके बाद कुमारियो ने एक छोटे से रूपक का अभिनय किया, जिसमे भारत के दीन-हीन किसान का वास्तविक रूप दर्शाया गया था। भारतीय प्रजातन्त्र के जन्मोत्सव पर नगरो मे मनाए गए दीपोत्सव को एक किसान सर्वथा आश्चर्यजनक मुद्रा मे देख रहा था। मानो उसे इस सबकी कोई खबर नही, और हो भी तो उसे इस सबका रहस्य ज्ञात नही, उसे कोई प्रसन्नता नही।

रूपक के अन्त मे कुमारियो ने पतग-नृत्य का प्रदर्शन भी किया। दर्शक इसे देखकर मन्त्र-मुग्ध से रह गए। अन्त मे लता ने मच पर आकर कहा—'सदियो के बाद आज हमारे देश मे जनतन्त्र की स्थापना हुई है। परन्तु हमारे देश मे जन साधारण को—दीन-हीन किसान और मजदूर-वर्ग को—इतने महान् परिवर्त्तन का पूरा-पूरा पता नही। यदि हो भी तो उसे इस मगल वेला मे कोई उल्लास नही, कोई अनोखा कहा जानेवाला आनन्द नही। इसके लिए हम उस दीन-हीन किसान अथवा मजदूर वर्ग को दोषी नही कह सकते। दोष तो बहुत-कुछ हमारा ही है—हमारी सरकार का है। हम उसे यह सब समझने का अवसर नही दे सके, उसकी दयनीय स्थिति को सुधार नही सके। सरकार के सामने इस समय बडी-बडी समस्याएँ है। इन समस्याओ को वह धीरे-धीरे हल कर रही है। परन्तु जब

किसानो को—जनसाधारण को खुशहाल करने पर सरकार पूरा-पूरा ध्यान देगी, तब चुटकी बजाते किसान और भारत का जन-जन यह समझ जाएगा कि प्रजातन्त्र मे मानव का जीवन कितना सुखी और स्वच्छन्द हो सकता है। इसी आशा को लेकर, इसी एक सुनहरी किरण को देखकर हम सहेलियाँ भी आज गणतन्त्र के जन्मोत्सव पर अपना उल्लास व्यक्त कर रही है। हम सहेलियो को यदि आपका मनोरजन करने मे कुछ सफलता मिली हो, तो इसका श्रेय हमारी आचार्या कुमारी सुमित्राजी को है, और जो त्रुटियाँ रह गई हो, उनके लिए हम कुमारियाँ ही दोषी है।'

और ठीक लता के इस निवेदन की समाप्ति के साथ मच का पर्दा गिरा दिया गया।

सुमित्रा ने कभी यह कल्पना नही की थी कि लता और उसकी सहेलियाँ इतना सुन्दर और कलात्मक अभिनथ कर सकेगी, और वह भी सुमित्रा को बिना कोई पूर्व सूचना दिए ही ! फिर लता ने अपने भाषण मे इस प्रदर्शन की सफलता का जो सारा श्रेय सुमित्रा को दिया है, वह भी इन सहेलियो की सुमित्रा के प्रति गहरी कृतज्ञता और आत्मीयता का सूचक है।

इस दशा मे सुमित्रा ने भी मच के निकट जाकर दर्शको से दो शब्द कह देने की आवश्यकता का अनुभव किया। कहा उसने—'गान्धी महिला विद्यालय की कुछ छात्राओ ने आज जो आयोजन किया है, वह उनकी अपनी सूझ है। मुझे उनके रूपक और अभिनय पर गर्व है। यद्यपि इन छात्राओ ने इस सबध मे मुझसे कभी कोई परामर्श नही किया, फिर भी मेरे विचारो की पृष्ठभूमि पर ही प्रिय लता ने अपने जो विचार प्रकट किए है, उनमे यदि कही कोई अनौचित्य हो , तो अपनी छात्राओ की ओर से मै आप सबसे क्षमा चाहती हूँ।'

तालियो की गड़गड़ाहट हुई और दर्शको की ओर से घोप महोदय ने आज के इस कार्यक्रम की सफलता पर छात्राओ के साथ-साथ आचार्या सुमित्रा की भी यथेष्ट प्रशसा करते हुए आभार प्रकट किया।

धीरे-धीरे दर्शक जब विदा हो चुके, तो नलिनी ने सुमित्रा से कहा—'आज तुम्हारा बहुत समय हम लोगो ने लिया, बहिन! अच्छा, अब यह बतलाओ कि तुम छात्रावास जाओगी या रजनी के घर ?'

'रात तो बहुत हो चुकी है!' लता ने बीच मे ही कहा—'परन्तु रजनी आपकी राह देख रही होगी, आचार्याजी!'

'तुम चिन्ता न करो, लता!' सुमित्रा ने कहा—'तुम छात्राओ के स्नेह से ही मै बँधी हूँ। तुम्हे निराश नही कर सकती। लेकिन आज जो देर हुई है, इसके लिए मै दोषी नही।' और मुसकराते हुए सुमित्रा ने नलिनी से कहा—'हाँ बहिन, ड्राईवर से कह दो कि मुझे पहले रजनी के घर ले जाए और वहाँ से छात्रावास ले जाकर छोड दे।'

नलिनी ने तत्काल ड्राईवर को आवश्यक आदेश दिया और सुमित्रा को विदा किया।

रात बहुत भीग चुकी थी, अत सुमित्रा ने रजनी के घर अधिक देर तक बैठना ठीक नही समझा। दस-पन्द्रह मिनट बैठकर ही उसने नम्रता और शिष्टाचार के साथ विदा माँग ली।

नलिनी की कार सुमित्रा को उसके छात्रावास मे पहुँचाकर वापस चली गई।

थकी-माँदी सुमित्रा शीघ्र ही अपनी पोशाक बदलकर पलग पर जा लेटी। परन्तु प्रयन्त करने पर भी उसे शीघ्र नीद नही आ सकी। आज के दीपोत्सव की झाँकी उसकी आँखो के सामने रह-रहकर झूल उठती थी। वह समझ नही सकी कि शहरो का सम्पन्न वर्ग जिसे मगल वेला कह रहा है और अपरिमित खर्च कर इतना उल्लसित हो रहा है, उसे हमारे देश का मेरुदण्ड—दीन-हीन वर्ग—भी क्या मगल वेला समझ रहा है ?

सुमित्रा के अन्तर की जागरूक नारी ने कहा—नही, कभी नही।

आज सध्या समय ही छात्रावास के बगीचे मे टहलते समय सुमित्रा ने देखा था कि सामने सडक पर घास-फूस की जो झोपडियाँ बनी हुई है, उनमे रहने-

वाले अर्द्धनग्न मजदूर आज भी तो सदा की तरह मुह लटकाए किसी गहन गम्भीर चिन्ता की चिता पर मानो भीतर-ही-भीतर जल रहे थे। तब सुमित्रा कैसे स्वीकार करे कि यह मगल वेला हमारे देश के जन-जन की तस्वीर है ?

और, पता नही, कितनी रात तक सुमित्रा इसी उलझन मे व्यस्त रही और कब उसकी आँख लग सकी ।

—६—

सम्पादकीय कक्ष मे बैठे हुए प० देवदत्त शर्मा 'त्रिवेणी' के सम्पादन-कार्य में व्यस्त थे कि दरबान ने दबे पॉव आकर उनकी मेज पर एक सज्ञापत्र रख दिया और चला गया।

शर्माजी इस समय ऐसा कार्य नही कर रहे थे कि दरबान के आ जाने अथवा खडे रहने से कोई बाधा उत्पन्न होने की आशका की जाती। परन्तु दरबान को शर्माजी का यही आदेश था कि जब वह किसी कार्य मे व्यस्त हो, तो उन्हे टोका न जाए। इसीलिए दरबान उनकी मेज पर सज्ञापत्र रखकर चुपचाप बाहर चला गया।

शर्माजी आज की डाक देख रहे थे। उनके मन मे आया कि सज्ञापत्र तत्काल देखकर दरबान को यथोचित आज्ञा दे दी जाए, किन्तु पता नही, क्या सोचकर उन्होने ऐसा नही किया।

दरबान के चले जाने पर शर्माजी ने सज्ञापत्र देखा और तत्काल मेज पर रखी घण्टी का बटन दबा दिया। घण्टी की टनटनाहट सुनते ही दरबान भीतर दौडा आया। वह कुछ कहे, इसके पूर्व ही शर्माजी ने आदेश दिया—'उन्हे आने दो।'

दूसरे ही क्षण दरवाजे का पर्दा हटाते हुए एक आधुनिक तरुणी ने कमरे मे प्रवेश किया और सामने बैठे हुए शर्माजी को दोनो हाथ जोड नमस्कार किया।

शर्माजी ने खडे होकर आगन्तुक का स्वागत करते हुए कहा—'आइए, आचार्या सुमित्राजी!'

सामने की कुर्सी पर बैठते हुए सुमित्रा ने कहा—'बहुत दिनो से आपसे मिलना चाहती थी, किन्तु कोई अवसर नही मिला।'

'मेरा सौभाग्य है कि वह अवसर आज मिल गया।' शर्माजी ने मुसकराते हुए कहा—'कहिए, क्या आज्ञा है ?'

शर्माजी के उत्तर का प्रारम्भिक अश सुमित्रा को जितना मधुर लगा, अन्तिम अश उतना ही तिक्त। यह बात नही कि सुमित्रा किसी सम्पादक अथवा पत्रकार से इसके पूर्व कभी मिली न हो और उसने कोई बात न की हो, किन्तु प्रथम वाक्य मे ही 'क्या आज्ञा है' कहकर शर्माजी मानो काम के अतिरिक्त इधर-उधर की कोई बात नही करना चाहते।

सुमित्रा को लगा, अपने-अपने स्वभाव की बात है! उसने शर्माजी की ओर ध्यानपूर्वक देखा। गम्भीर मुद्रा, सिर पर बडे-बडे बाल, जिनमे कथा करने की छाप के साथ-साथ बुढापे के चिन्ह भी झलकने लगे है, बडी-बडी, किन्तु साव-धानी के साथ कटी-छँटी मूछे, चौडा ललाट, घनी भौहे, बडी-बडी और प्रतिभा टपकाती आँखे, गाल कुछ-कुछ पिचके हुए। सफेद खादी का एक कुर्त्ता, खुले कालर का साधारण-सा कोट और धोती। पैरो मे साधारण-से बाटा के स्लीपर।

सुमित्रा के अन्तर की नारी ने स्वीकार किया कि शर्माजी अनुमानतः इस जीवन के चालीस वसन्तो से कुछ अधिक ही पार कर चुके है। कदाचित् इसीलिए उन्हे इस दुनिया मे कोई विशेष आकर्षण नही रह गया है। सुमित्रा को अपने कौमार्य और रूप-सौन्दर्य पर इतना विश्वास था कि उसे देखकर कोई भी पुरुष उससे बाते करने मे जल्द ऊब नही सकता, परन्तु आज उसका यह विश्वास कुछ लडखडा उठा। शर्माजी के व्यक्तित्व का उस पर अदभुत् प्रभाव पडा। अधिक कुछ सोचने-विचारने का अवसर नही था। सुमित्रा ने अपने हाथ मे दबे हुए एक लेख को शर्माजी की ओर बढाते हुए कहा—'गणतत्र दिवस की बरस-गाँठ पर मैने भी कुछ लिख डाला है। 'त्रिवेणी' के लिए उपयुक्त समझे तो प्रकाशित कर दीजिएगा, अन्यथा वापस भेज दीजिएगा।' और कुर्सी से उठते हुए सुमित्रा ने कहा—'बस, यही कार्य था।'

"यदि समयाभाव न हो, तो दो-चार मिनट बैठ जाइए।' शर्माजी ने लेख लेते हुए और सुमित्रा की ओर देखते हुए कहा—'मै अभी इसे देखकर अपना विचार बतलाए देता हू। आशा-निराशा के झूले पर मै आपको झुलाना नही चाहता।' और शर्माजी लेख पढने लगे।

सुमित्रा फिर कुर्सी पर बैठ गई। उसे फिर शर्माजी के सबध मे मन-ही-मन कुछ सोचने-विचारने का समय मिल गया। एक क्षण पूर्व शर्माजी की पहली बात सुनकर सुमित्रा उनके सबध मे जो धारणा बनाने लगी थी, वह फिर डगमगा उठी। उसने स्वीकार किया कि अपने सबध मे उसका जो विश्वास अभी-अभी डगमगा उठा था, वह शायद भ्रम था। हाँ, भ्रम! यदि शर्माजी सुमित्रा के रूप-सौन्दर्य से तनिक भी प्रभावित न हुए होते, तो इस प्रकार कुछ मिनट बैठने का यह अनुरोध क्यो करते? जो व्यक्ति प्रथम वाक्य मे ही काम की बात करने का स्पष्ट सकेत कर देता है, वह इस प्रकार बैठने का अनुरोध नही कर सकता। परन्तु दूसरे ही क्षण सुमित्रा को लगा, हो सकता है, शर्माजी अपना सम्पादकीय कर्त्तव्य इसी प्रकार तत्क्षण करने के आदी हो। जो भी हो, शर्माजी की इस सहृदयता के लिए वह कृतज्ञ रहेगी।

लेख का कुछ प्रारभिक, कुछ मध्यम और अन्तिम अश देखकर शर्माजी ने कहा—'लेख आपका बडा प्रभावोत्पादक है। प्रतीत होता है, यह आपकी अपनी अनुभूतियो से ही ओतप्रोत है। मै इसे 'त्रिवेणी' के आगामी अक मे ही प्रकाशित कर दूँगा।'

सुमित्रा को एक क्षण को लगा कि वह भी अब कह दे कि बस, काम की बात हो चुकी, और वह जा रही है। परन्तु ऐसा वह कह नही सकी। नारी-सुलभ शील-सकोच और पुरुष की परुषता मे आखिर कुछ तो अन्तर रहता ही है। फिर जो पुरुष अपने जीवन के चालीस से अधिक वसन्त बिता चुका हो, और जो नारी अभी बाईस बसन्त ही कठिनाई से बिता सकी हो और कुमारी भी हो, उन दोनो की व्यावहारिकता मे भी धरती-आकाश का अन्तर होना अवश्यम्भावी है। इसीलिए सुमित्रा ने कहा—'हाँ, शर्माजी, इस लेख मे मेरी अपनी अनुभूतियाँ तो है ही, कुछ उन

अगणित शरणार्थियो की भी है, जिन्हे अपनी मातृभूमि से मदा के लिए बिदा लेकर दूसरो के आश्रय और कृपा पर अपने जीवन की साँसे गिननी पड रही है।'

'सफल रचना का निर्माण इन्ही तत्त्वो पर निर्भर करता है।' शर्माजी ने कहा—'अपनी अनुभूति के साथ कुछ कल्पना और कुछ देखी-सुनी घटनाओ का सत्याश जब कलात्मक ढग से एकाकार हो जाता है, तब कथा-साहित्य जहाँ प्राणप्रद और ओजपूर्ण हो उठता है, वहाँ निबन्ध भी अत्यन्त प्रभावपूर्ण और प्रवहमान हो जाता है। आपके निबध मे यही विशेपता है। आप बहुत अच्छा लिखती है।'

कुछ रुककर शर्माजी ने अपनी आँखो पर चढे चश्मे को उतारते हुए और उसे मेज पर पडे घरे म रखते हुए कहा—'कभी-कभी इसी प्रकार 'त्रिवेणी' म आप अपने निबन्ध देती रहे, तो कृपा होगी।'

'आपसे प्रोत्साहन मिला, तो अवश्य लिखती रहूँगी।'

'प्रोत्साहन तो उदीयमान लेखक – लेखिकाओ को दिया जाता है।' शर्माजी ने कहा—'आप तो अँगरेजी पत्रो मे लिखा ही करती है। फिर गाधी महिला विद्यालय जैसी प्रतिष्ठित शिक्षण-सस्था की आप आचार्या है। यह कहना उचित होगा कि 'त्रिवेणी' को आप अपना सहयोग देकर मुझे उपकृत करेगी।'

'यह आपका सौजन्य है, शर्माजी!' सुमित्रा ने गभीर मुद्रा से कहा—'आप जैसे अनुभवी पत्रकार की प्रतिष्ठित पत्रिका मे मेरे हिन्दी निबन्धो का प्रकाशन मेरे लिए गौरव की बात होगी।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'अच्छा, अब आज्ञा दीजिए। कभी -कभी मै आपसे मिलने और आपके अनुभवो से लाभान्वित होने की चेष्टा करती रहूँगी।'

'मै सहर्ष यथासाध्य सेवा करने के लिए तत्पर रहूँगा।' और शर्माजी ने खडे होकर आचार्या सुमित्रा को बिदा किया।

सुमित्रा के चले जाने पर शर्माजी बहुत देर तक उसके सबध मे सोचते रहे। क्या रूप-सौन्दर्य और शील-सकोच पाया है इस सुमित्रा ने! प्रतिभा भी अनोखी

पाई है। हिन्दी-अँगरेजी मे समान रूप निबन्ध लिखने मे वह दक्ष है। किन्तु भाग्य की विडम्बना है कि बेचारी को शरणार्थी होकर अपनी मातृभूमि से सदा के लिए बिछुडकर इतनी दूर आ जाना पडा। गनीमत है कि निर्मल नागर के प्रयत्न से यहाँ आचार्या हो गई।

उसका निबन्ध उसकी सवेदनशीलता का प्रतिबिम्ब है। कितनी मार्मिकता है उसकी अभिव्यक्ति मे। कदाचित् यही कारण है कि वह अब तक कुमारी है। उसे अपने अनुरूप जीवन-सगी मिल जाना भी तो साधारण बात नही।

शर्माजी को अपने देश की इस सामाजिक स्थिति पर तरस आ गया। उनका हृदय भर आया। कितने अरमानो से उसके माता-पिता ने उसे पाला-पोसा और पढाया-लिखाया होगा, परन्तु आज उसे कौमार्य का कठोर अनुभव करना पड रहा है। लडकियो को अधिक शिक्षित करना भी एक बला है। उनकी शिक्षा-दीक्षा पर खर्च करो, फिर उनके विवाह मे भी खर्च करो और अन्त मे खर्च करनेवाले के हाथ कुछ भी नही लगता। उसे अकिंचन ही रहना पडता है। फिर अनुकूल वर मिलने मे जो कठिनाइयाँ सामने आती है, वे अलग!

शर्माजी ने स्वीकार किया, इस मृत्युलोक मे जन्म लेकर कोई भी मानव सम्पूर्ण अर्थो मे कभी सुखी नही रह सकता। सघर्षो और अभावो का नाम ही मानव-जीवन है। स्वय उनका अपना जीवन कितने सघर्षों मे बीत रहा है!

अपने सघर्षो की बात अधिक देर तक शर्माजी सोचने-विचारने से घबरा उठते है। ऐसी बाते सोच-विचारकर उनका हृदय फटने लगता है। इसीलिए इस विचारधारा के उठते ही वह अपने सपादकीय कक्ष से उठकर बाहर चले गए।

'त्रिवेणी' कार्यालय के सामने ही एक बडा बगीचा है। उसी मे जाकर शर्माजी ऐसे अवसर पर जा बैठते और यत्किंचित् सन्तोष का अनुभव करते। किन्तु आज इस बगीचे मे आकर भी वह अपने सघर्षोवाली मनोवेदना से मुक्ति न पा सके। उन्हे स्मरण आ गया उस कथाकार शैलेन्द्र का, जो उन्हे अपनी पार्टी मे सम्मिलित होने का लोभ दिखला रहा था।

चार दिनो की जिन्दगी के सघर्ष से ऊबकर कर्त्तव्यच्युत होना शर्माजी की

समझ मे मानव की सबसे बडी कायरता है। साहसपूर्वक सघर्षों का सामना करना ही बहादुरी है। उस शैलेन्द्र से यह सुमित्रा लाख बार वन्दनीय है। कितने सघर्षो का सामना उसे करना पडा, फिर भी बहादुरी से जीवन-सग्राम के मोर्चे पर डटी हुई है।

बहुत देर तक इन्ही विचारधाराओ पर शर्माजी तिरते रहे और पुन अपने कार्यालय मे चले गए ।

— ७ —

गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या सुमित्रा का नाम तो प्रफुल्ल घोष ने उसी समय से सुन रक्खा था, जब निर्मलकुमार नागर के प्रस्ताव पर उसे नियुक्त किया गया था। यह भी ज्ञात हो चुका था कि वह अब तक कुमारी है, और पजाब के अगणित शरणार्थियो की भाँति वह भी दुर्दिन की मारी है। परन्तु सुमित्रा को निकट से देखने का अवसर प्रफुल्ल घोष को अब तक नही मिला था। मिलता कैसे ? प्रफुल्ल को अपने कारबार के सिलसिले मे प्राय कलकत्ते मे ही रहना पडता है।

सिगरेट का एक बडा कारखाना कलकत्ते मे चल रहा है। वह कारखाना विदेशियो का था—अँगरेजो का। परन्तु भारत जब स्वतन्त्र होने की तूफानी तैयारियाँ करने लगा और अँगरेज अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर यहाँ से भागने लगे, तब इस कारखाने को भी इसके मालिको ने बेच दिया और वे अपने देश चले गए। प्रफुल्ल घोष ने इस कारखाने को खरीद लिया और बडी लगन से उसे चला रहा है।

प्रफुल्ल अपने मुँह मे चाँदी की चम्मच लेकर इस ससार मे उत्पन्न हुआ है। लाखो की सम्पत्ति उसके पिता छोड गए है। सौभाग्य या दुर्भाग्य से प्रफुल्ल के बडे भाई का देहान्त हो चुका है, और आज अतुल पैतृक सम्पत्ति का वह एकमात्र अधिकारी है। पैतृक भवन इलाहाबाद मे ही है, अत प्रफुल्ल का परिवार यही रहता है।

प्रफुल्ल का परिवार बहुत बडा नही है। सन्तानहीन विधवा भाभी है, जो

रात-दिन पूजा-पाठ मे लगी रहती है। पति के देहावसान के बाद उसे मानो इस दुनिया मे कही कोई रस नही रह गया है। दो छोटी बहिने है, जो गान्धी महिला-विद्यालय मे पढती है। इनके अतिरिक्त प्रफुल्ल घोष की पत्नी भी थी, जो चार-पॉच वर्ष पूर्व ही इस घर मे आई थी, परन्तु एक पुत्र को जन्म देकर वह बेचारी इस दुनिया से उठ चुकी। हॉ, उसका पुत्र इस समय तीन वर्ष का है।

इस परिवार को लेकर प्रफुल्ल कलकत्ते नही जाना चाहता। एक तो कलकत्ता बहुत महँगा है, दूसरे इलाहाबाद का आलीशान पैतृक भवन न तो वह सूना छोडने के पक्ष मे है, न उसे किराए पर देना ठीक समझता है। यही कारण है कि प्रफुल्ल कभी अपने बच्चे के साथ और कभी अकेले ही कलकत्ते मे महीनो बना रहता है। बीच-बीच मे प्रयाग आकर परिवार की देखभाल कर जाता है और शहर के मित्रो से मिल-भेट जाता है।

प्रफुल्ल के मित्रो मे निर्मलकुमार नागर का स्थान सर्वोपरि है। दोनो ही कालेज मे सहपाठी थे। तभी से एक - दूसरे को बहुत चाहते है। दोनो ही सार्वजनिक कार्यो मे हाथ बॅटाने के आकाक्षी है। यही कारण है कि निर्मल नागर ने जब गान्धी महिला-विद्यालय की स्थापना का प्रस्ताव रक्खा, तब प्रफुल्ल ने, न केवल उसका समर्थन किया, प्रत्युत हाथ खोलकर आर्थिक सहयोग भी दिया।

कल रात्रि मे जब नागर के निवासस्थान पर प्रफुल्ल ने गान्धी महिला-विद्यालय की कुछ कुमारियो द्वारा अभिनीत रूपक देखा, तब आचार्या सुमित्रा के प्रति अनायास ही वह एक आकर्षण से भर उठा। अपनी छोटी बहिनो से भी कई बार सुमित्रा की प्रशसा वह सुन चुका था।

सुमित्रा के रूप-रङ्ग म सल शरीर, शिष्ट व्यवहार और उसकी मधुर वाणी मे प्रफुल्ल को एक अनोखा आकर्षण प्रतीत हुआ। सुबह की चाय पीकर वह अपनी बैठक मे बैठा-बैठा आज इस सुमित्रा को ही लेकर घण्टो उलझा रहा।

इसी सिलसिले मे उसे सहसा अपनी दिवगत पत्नी का ध्यान आ गया। कितनी सुन्दर थी उसकी पत्नी शैल! नववधू के रूप मे जिस दिन उसने प्रफुल्ल के घर मे पग रक्खा था, वह दिन क्या प्रफुल्ल कभी भूल सकता है? शैल की

अप्रतिम रूपराशि पर प्रफुल्ल न्योछावर हो उठा था। फिर उसके आज्ञाकारी रूप ने तो मानो प्रफुल्ल को खरीद ही लिया था। इस आज्ञाकारिता के साथ-साथ शैल मे सबसे बडी विशेषता यह थी कि वह प्रफुल्ल की प्रत्येक रुचि-अरुचि को बहुत ही जल्दी समझ चुकी थी—पढ चुकी थी। प्रफुल्ल ने तभी स्वीकार किया था कि दाम्पत्य जीवन के रङ्गमहल को नन्दन-वन की भाँति सुखद और सुवासित करने के लिए यह परख ही सर्वोपरि है। शैल मे यह सब परखने की अद्भुत क्षमता थी।

शैल के देहावसान के बाद अनेक विवाह-प्रस्ताव आए, परन्तु प्रफुल्ल ने किसी को स्वीकार नही किया। उसे भय था कि पत्नी सज्ञा के साथ जो सुखद स्मृतियाँ शैल छोड गई है, वे कही चकनाचूर न हो जाएँ। कौन कह सकता है कि जो दूसरी कुमारी उसकी पत्नी बनकर आएगी, वह शैल के रिक्त स्थान की सभी अर्थो मे पूर्त्ति कर सकेगी। इसीलिए प्रफुल्ल ने यह कहकर इन प्रस्तावो को अस्वीकार कर दिया कि अभी हाल वह विवाह नही करना चाहता।

परन्तु इस सुमित्रा को कल रात्रि मे जब से प्रफुल्ल ने देखा है, एक सर्वथा अप्रत्याशित विचार-धारा के भँवर-जाल मे वह डूबने-उतराने लगा है। पता नही, हृदय के किस अज्ञात कक्ष से रह-रहकर एक ध्वनि उठती है कि यह सुमित्रा भी शैल से कम सुन्दर नही है।

तो क्या नारी की सुन्दरता ही सब-कुछ है ? नारी का रूप और यौवन ही सर्वोपरि है ? परन्तु प्रफुल्ल स्वय इन प्रश्नो का उत्तर खोज नही पाता। वह कैसे खोज सकता है? इन प्रश्नो का उत्तर तो वही भुक्तभोगी दे सकता है, जिसने नारी के रूप और यौवन को, उसके उभार तथा उतार को समान रूप से देखा-समझा हो। प्रफुल्ल ने केवल ज्वार देखा है, भाटा नही। नारी के रूप और यौवन के सम्बन्ध मे उसकी जो रँगीली धारणाएँ है, उन्हे वह जर्जरता की अनिवार्यता से रसहीन नही बनाना चाहता। जब जो होगा, देखा जाएगा। 'खाओ-पियो और मौज उडाओ। दो दिन का जीवन और एक दिन की जवानी!' परन्तु प्रफुल्ल ऐसे प्रश्नो को उद्भूत न होने देगा—हरगिज नही। वह तो कुछ पुस्तको मे ऐसी बाते पढ

चुका है और जब कभी अपने मित्रो से भी यह सब सुन चुका है, इसीलिए कभी-कभी ऐसे प्रश्न अनायास उसके अन्तस्तल को मथने लगते है।

पैसे का जहाँ तक सम्बन्ध है, प्रफुल्ल को कोई कमी नही। तरुणाई भी उस की इस समय ज्वार पर है। परन्तु यह ज्वार क्या सदा अक्षुण्ण रहेगा? नही, हरगिज नही। प्रकृति के अटल नियम को कब, कौन रोक सका है? तब प्रफुल्ल इस तरुणाई मे ही क्यो जीवन की रगीनियो से दूर रहे? परन्तु ऐसा विचार उठते ही शैल की जो स्मृति और उसकी मूर्त्ति आँखो के सामने सहसा आ जाती है, उसे प्रफुल्ल कैसे दूर करे?

शैल और सुमित्रा!

इन दोनो नारियो को लेकर प्रफुल्ल एक विकट समस्या मे उलझ गया है। एक दिवगत है, दूसरी जीवित है—सामने है। एक के रसाकर्षण का प्रफुल्ल स्वय अनुभव कर चुका है, परन्तु जी भरकर नही। एक अतृप्ति रह गई है। वह अतृप्ति यदि सुमित्रा को प्राप्त कर पूरी की जा सके, तो क्या बुराई है? हाँ, शैल आज इस दुनिया मे होती, तो निश्चय ही प्रफुल्ल यह सब सोचने-विचारने की हिमाकत न करता। और, सुमित्रा यदि विवाहित होती, तो भी प्रफुल्ल इस भावना को अपने मन मे कभी न उठने देता। परन्तु सुमित्रा है कुमारी और दुर्दिन की मारी। यदि किसी तरह सुमित्रा को वह अपनी ओर आकर्षित कर सके, अपनी बना सके, तो उसके जीवन की शुष्कता निश्चय ही सरसता मे परिणत हो सकती है। यद्यपि यह कोई नही कह सकता कि सुमित्रा प्रफुल्ल के प्रति आकृष्ट हो ही जाएगी, परन्तु प्रयत्न करने से चूकना ठीक न होगा।

तभी प्रफुल्ल के मन मे दूसरी आशका उत्पन्न हुई। सुमित्रा है पजाबी और वह रहा बगाली। पता नही, सुमित्रा अन्तर्जातीय विवाह करना स्वीकार भी करेगी या नही? लेकिन करेगी क्यो नही? आज के प्रगतिशील युग मे यह सब ढकोसले तीव्रता से मिटते जा रहे है। हमारे नेताओ ने इस दिशा मे स्तुत्य पग बढा दिया है। कितने ही चोटी के नेताओ ने अपने पुत्र-पुत्रियो के अन्तर्जातीय विवाह कर डाले है और यह अवरुद्ध—सा मार्ग मानो सबके लिए प्रशस्त कर दिया

है । फिर, सुमित्रा यदि अन्तर्जातीय विवाह न करना चाहेगी, तब देखा जाएगा।

बहुत देर तक इसी सम्बन्ध मे प्रफुल्ल आज तानाबाना बुनता रहा । अन्त मे उसने अपनी छोटी बहिन कजला को बुलाया और कहा—'कजला, आज सन्ध्या समय तुम अपनी आचार्या कुमारी सुमित्राजी को अपने घर जलपान के लिए आमन्त्रित कर देना । मेरा मतलब यह है कि विद्यालय मे पहुँचते ही उनसे मेरी ओर से अनुरोध कर देना।'

'मै बहुत दिनो से चाहती थी दादा, कि आचार्याजी को अपने घर बुलाऊँ।' कजला ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'परन्तु आप यहाँ नही थे, इसलिए मैने अपना विचार स्थगित कर रक्खा था।'

'तब ठीक है।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'आज तुम अपना विचार कार्य रूप मे परिणत कर डालो, कजला!'

'लेकिन आप भी फोन पर उन्हे निमत्रण दे दे, तो अधिक अच्छा होगा।' कजला ने अनुरोध के स्वर मे कहा।

'अच्छा, मै भी दो बजे के बाद फोन पर सुमित्राजी को निमत्रण दे दूँगा। परन्तु तुम विद्यालय मे पहुचते ही मौखिक निमत्रण अवश्य दे देना।'

'आपका आदेश क्या मै भूल जाऊँगी, दादा?' और मुसकराती हुई कजला उस कमरे से चली गई।

—८—

रात मे बहुत देर से सुमित्रा सो सकी थी, इसलिए सुबह देर से वह जाग सकी। चाय पीकर वह अपने बैठकखाने मे बैठी-बैठी कल रात की ही बातो मे अनायास उलझने लगी। नलिनी की पुत्री लता और उसकी सहेलियो ने जिस रूपक का अभिनय किया था, वह बहुत ही सामयिक और प्रभावोत्पादक रहा। और, इन छात्राओ के बुद्धि-कौशल तथा सफल अभिनय के कारण सुमित्रा को अनायास और अप्रत्याशित श्रेय भी मिल गया।

दर्शको की ओर से यह श्रेय जिस व्यक्ति ने दिया था, उसका एक चित्र सुमित्रा की ऑखो के सामने नाच उठा। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, बडी-बडी ऑखे, खुला सिर और दूध-सी श्वेत खादी की पोशाक। और बगाली होकर भी विशुद्ध हिन्दी बोल सकना मानो उस व्यक्तित्त्व की अपनी विशेषता थी।

सुमित्रा को स्मरण आया, नलिनी कह रही थी कि यह बगाली सज्जन—प्रफुल्ल घोष—इस गान्धी महिला-विद्यालय के अनन्य सहायको मे से है। लेकिन जिस प्रकार प्राय सभी आमन्त्रित दर्शक सपत्नीक आए थे, प्रफुल्ल घोप भी सपत्नीक क्यो नही आए? तभी सुमित्रा को स्मरण आया कि व्यापार के सिलसिले मे वह कलकत्ते मे रहते है। सम्भव है, उनकी पत्नी कलकत्ते मे हो, अथवा अन्य किसी कारण वह न आ सकी हो। जो भी हो, सुमित्रा ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि वह आज प्रफुल्ल की छोटी बहिनो—कजला और रेणुका—से इस सम्बन्ध मे पूछताछ करेगी।

तभी सुमित्रा की बौद्धिक नारी ने बाधा दी—किसी पर-पुरुष के सम्बन्ध मे,

उसकी पत्नी को लेकर कोई पूछताछ करना, एक कुमारी के लिए कहाँ तक उचित होगा? सुमित्रा अपने-आप मानो किसी लज्जा का अनुभव कर सकुचित-सी हो उठी। जहाँ तक हो सकेगा, अब कजला अथवा रेणुका से वह ऐसी कोई बात नही पूछेगी। यदि पूछेगी भी, तो किसी यथोचित भूमिका के साथ ही ऐसा करेगी। यो वह नलिनी बहिन से भी अपनी इस जिज्ञासा का समाधान कर सकती है।

इन्ही विचारो मे डूबती-उतराती सुमित्रा सम्भवत बहुत देर तक आज बैठी रहती कि परिचारिका ने आकर उसका ध्यान बँटा लिया, कहा—'नौ बज चुके है, सरकार! आप स्नान-भोजन की तैयारी नही करेगी आज?'

सुमित्रा ने कुछ चौकते हुए कहा—'अरे, मै यह सब भूल ही गई थी। चलो, मै अभी स्नान करने आ रही हूँ। विद्यालय मे आज छुट्टी थोडे ही है।' और सुमित्रा बैठक से उठकर नहाने-धोने की तैयारी मे जुट गई।

ठीक समय पर तैयार होकर सुमित्रा विद्यालय मे जा पहुँची। अपने कमरे मे पहुँच, वह आवश्यक कागज-पत्रो मे खो जाने की चेष्टा करने लगी। परन्तु इस प्रयत्न मे उसे सफलता न मिल सकी। उसका मन किसी काम मे नही लग रहा था। इस बीच जितनी भी अध्यापिकाएँ उसके पास आईं, सुमित्रा सदा की तरह खुलकर उनसे कोई बात न कर सकी। सुमित्रा स्वय अपने इस रुख पर विचार करने लगी और मन-ही-मन एक खीझ से भर उठी। उसने स्वीकार किया, यह सब उसके लिए अशोभन है। परन्तु मन की उडान पर उस-जैसी मानवी का वश ही क्या?

इसी बीच उसके कमरे मे सहसा कजला ने प्रवेश किया और दोनो हाथ जोड अभिवादन किया।

सुमित्रा ने मुसकराते हुए उसका अभिवादन स्वीकार किया और कहा—'आओ कजला, बैठो।'

कजला को देखते ही जो मुस्कान सुमित्रा के ओठो पर सहसा नाच उठी, उस पर स्वय उसे तनिक-सा आश्चर्य हुआ। आज सुबह से अब तक सुमित्रा जिस

गम्भीरता से ओतप्रोत थी, वह इस कजला को देखते ही सहसा भाप-जैसी कहाँ विलीन हो गई! आखिर क्यो? क्या किसी मेघ-पटल को विदीर्ण कर कोई सुनहरी किरणे उसके सामने नाच उठी है? और इस प्रश्न का उत्तर खोजने, सुमित्रा को कही दूर नही जाना पडा। तत्काल उसने अर्द्धविदित रूप मे यह स्वीकार किया कि जिस प्रफुल्ल को लेकर वह आज सुबह से ही उलझ रही है, उसकी बहिन कजला को सामने देखकर ही यह मुस्कान उसके ओठो पर सहसा नाच उठी है।

कजला चुपचाप बैठी अपनी आचार्या को ध्यानावस्थित-सी देख रही थी। तभी सुमित्रा ने पूछा—'कहो कजला, क्या बात है? पढाई-लिखाई ठीक चल रही है न?'

'जी, ठीक चल रही है।' कजला ने उत्सुकता के साथ कहा—'आज एक अनुरोध लेकर आई हूँ।'

'तो इतने सकोच की बात क्या है, कजला!' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'सुनूँ भी, क्या अनुरोध है तुम्हारा?'

'आज सन्ध्या समय आप मेरे घर चलकर जलपान कीजिए!' कजला ने प्रसन्नता से भरकर कहा—'दादा ने यह अनुरोध किया है।'

कजला के दादा का नाम सुनते ही सुमित्रा एक पुलक-प्रकम्प से भर उठी। तो यह अनुरोध प्रफुल्ल घोष ने किया है! जिनको लेकर आज वह स्वय उलझ रही है, उनका अनुरोध वह कैसे टाल सकेगी!

सुमित्रा को इस प्रकार चुप देख, कजला का सारा उत्साह ठण्ढा पडने लगा। तो क्या उसकी आचार्या जलपान का यह निमत्रण स्वीकार न करेगी? अधीर होकर उसने फिर कहा—'दादा भी सम्भवत दो बजे के बाद आपको टेलीफोन द्वारा यह निमन्त्रण देगे।'

कजला की यह बात सुनते ही सुमित्रा का रोम-रोम पुलकित हो उठा। प्रफुल्ल घोष स्वय टेलीफोन द्वारा उसे आमन्त्रित करेगे, यह क्या कम प्रसन्नता की बात है!

सुमित्रा ने गद्गद होते हुए कहा—'टेलीफोन द्वारा निमन्त्रण देने की तो कोई आवश्यकता नही, कजला!'

कजला की निराशा उत्तरोत्तर बढने लगी। कैसी है यह आचार्या? मैं स्वय निमन्त्रण दे रही हूँ, दादा भी टेलीफोन द्वारा निमत्रण देगे, परन्तु यह है कि स्वीकृति देने मे इतना आगा-पीछा सोच रही है! कजला ने कुछ तीक्ष्ण दृष्टि से अपनी आचार्या को देखते हुए कहा—'तो क्या आपने हमारा निमन्त्रण स्वीकार नही किया?'

'अरे, यह मैंने कब कहा, कजला?' सुमित्रा ने आश्चर्यचकित होकर कहा और एक मधुर मुस्कान उसके ओठो पर नाच उठी।

किसी नीर-भरी बदली के बीच मानो बिजली चमक उठी। कजला को आशा की सूक्ष्म सुनहरी किरणो का दर्शन हुआ। कहा उसने—'लेकिन आपकी स्वीकृति तो अब तक नही मिली?'

'स्नेह और आत्मीयता से भरे निमन्त्रण को भला, कौन टाल सकता है, कजला?' सुमित्रा ने कजला का—उसके दादा का—निमत्रण स्वीकार करते हुए कहा—'मैं अवश्य आऊगी तुम्हारे घर।' फिर एक क्षण रुककर बोली—'मेरा मतलब तुम नही समझ सकी, कजला! तुम्हे शायद कुछ भ्रम हो गया। टेलीफोन द्वारा निमत्रण देने को मैने इसलिए अनावश्यक कहा था कि जब तुम स्वय निमत्रण दे रही हो, तब तुम्हारे दादा को टेलीफोन करने का कष्ट उठाना अनावश्यक है।'

'बिलकुल यही भ्रम हो गया था, आचार्याजी!' कजला ने कहा—'अच्छा, सन्ध्या समय हम लोग आपकी राह देखेगे।' और मुसकराती हुई कजला उस कमरे से अपनी कक्षा मे चली गई।

—६—

अपने ही जीवन-पृष्ठो को उलट-पुलटकर देखने और उन पर मन-ही मन विचार-विमर्श करने की सनक प० देवदत्त शर्मा मे विशेप रूप से घर कर चुकी है। आज सध्या समय 'त्रिवेणी' का नया अङ्क सामने रखकर वह अपना हुक्का गुडगुडा रहे थे और उस पत्रिका के सबध मे सोच-विचार रहे थे, जिसे छोडकर उन्हे 'त्रिवेणी' का सम्पादन-भार वहन करना पडा।

अपनी पत्नी मीरा की लम्बी बीमारी मे उस समय शर्माजी को दुनिया का बडा कटु अनुभव हुआ। मियादी बुखार से मीरा पीडित हो गई थी। परे सात सप्ताह तक उस मियादी बुखार ने पिण्ड नही छोडा था। इस मोतीझिरा मे बुखार के साथ-साथ मीरा को और भी अनेक उपसर्गो का शिकार हो जाना पडा था, जिनके फलस्वरूप न तो मीरा का पहले-जैसा मासल शरीर रहा, न कान्ति अथवा शक्ति। उसका शरीर अस्थि-पजर मात्र रह गया था। लेकिन इसी अस्थिपजर को बचा लेने के लिए शर्माजी ने आकाश-पाताल के कुलाबे एक कर दिए थे। शहर के बड-से-बडे और अधिक-से-अधिक फीस लेनेवाले डाक्टरो को उन्होने कई बार अपनी पत्नी को देखने के लिए घर बुलाया। दवा-दारू मे सीमा से बाहर उन्होने खर्च कर डाला, जिसका प्रायश्चित्त उन्हे अब तक करना पड रहा है।

इस बीमारी मे शर्माजी को लबी छुट्टी लेनी पडी। फलत जिस पत्रिका का शर्माजी सपादन करते थे, उसके सचालक ने उनकी सेवाए लेना बन्द कर दिया। पूँजीवादी युग जो ठहरा! इस युग म पूँजीपतियो का स्वार्थ—दूसरो का शोषण-—ही जहाँ सर्वोपरि है, वहाँ मानवता की झाँकी दुर्लभ हो चुकी है। फिर

शाब्दिक सहानुभूति उँडेलकर हमारे मित्र होने का दम्भ दिखलानेवाले भी हमारे सकट का अनुचित लाभ उठाने मे तनिक नही हिचकते। ऐसे ही एक मित्र उस पत्रिका का सम्पादन करने लगे। दाल-रोटी का बँधा-बँधाया सिलसिला भी शर्माजी का टूट गया।

ऐसी परिस्थितियो मे भी शर्माजी विचलित नही हुए। इस समय तो उनके समक्ष पत्नी मीरा के स्वस्थ हो जाने की समस्या ही सबसे बडी थी।

यह बात नही कि आर्थिक और मानसिक हथौडो की निरन्तर चोटो से शर्माजी का अन्तस्तल तिलमिला न उठा हो। परन्तु इस तिलमिलाहट को वह अपने ही अन्तराल मे दबाए रखना चाहते थे। अस्वस्थ पत्नी को इस तिलमिलाहट से वह अभिभूत नही करना चाहते थे।

दूर के एक साहित्यिक मित्र ने इस सकटापन्न स्थिति मे अपनी सामयिक सहायता देकर शर्माजी को अन्धकार मे भी प्रकाश की किरणो का दर्शन कराया। सैकडो मील दूर रहनेवाले इस स्नेही साहित्यिक ने एक दिन अनायास ही मनी-आर्डर द्वारा कुछ रुपया भेज दिया और लिख दिया—'भाभी के उपचार के लिए यह अकिचन सहायता स्वीकार कीजिए। इसे लौटाइए नही, अन्यथा मुझे असह्य कष्ट होगा।'

कहते है, स्वर्ग-नरक, सुख-दुख, मित्र-शत्रु, साधु-शैतान, फूल-काँटे सब इसी दुनिया मे है। उस दिन शर्माजी ने इन बातो मे से मित्र और शत्रुवाली बात का प्रत्यक्ष अनुभव किया। एक वह साहित्यिक है, जिसने शर्माजी की स्थिति को दयनीय समझते हुए भी उनकी रोजी छीन ली, और दूसरा यह साहित्यिक है, जिसने सैकडो मील दूर रहने पर भी और नाम-मात्र का परिचय होते हुए अपनी हैसियत के अनुसार नकद आर्थिक सहायता दी।

नौकरी छूट जाने से शर्माजी को कुछ चिन्ता तो अवश्य हुई, लेकिन पत्नी की अस्वस्थताजन्य चिन्ता के समक्ष वह नगण्य ही रही। वह जानते थे, यदि पत्नी स्वस्थ न हो सकी, तो उनकी गृहस्थी का रङ्गमहल धूल-धूसरित हो जाएगा। छोटे-छोटे अबोध बच्चो का पालन-पोषण सर्वथा असभव हो जाएगा। बडे बच्चे

हरीश को छोड, लज्जा बेटी और शम्भु तो इतने अल्पवयस्क हैं कि उनकी देखभाल करना और उन्हे पालना-पोसना देवदत्त—जैसे श्रमजीवी लेखक और पत्रकार के बस की बात नही।

जिस परिवार के पौधो को मीरा के साथ-साथ शर्माजी ने अपने शरीर के रक्त से सीच-सीचकर पाला-पोसा है, उनके उजड जाने की कल्पना करते ही शर्माजी कॉप उठते थे। जब कभी मीरा को हृदय-रोग के दौरे आने लगते, उसकी नाडी गायब होने लगती, तब शर्माजी को लगता कि उनकी जिदगी शायद इस ससार मे मात्र दुखो का पहाड ढोने मे ही समाप्त हो जाएगी। जब बच्चो के बडे होने, उनके ब्याह होने आदि के दिन निकट आ रहे है, तब क्या उनकी जीवन-सगिनी उनका साथ छोडकर चली जाएगी और उनके अब तक के दुखी जीवन को और भी अधिक दुखो से ढँक जाएगी ?

उन प्रसगो की धूमिल स्मृति से शर्माजी इस समय गहरे पश्चात्ताप से भर उठे, जब इस सती-साध्वी पत्नी को उन्होने तनिक-तनिक-सी गलती पर अपशब्दो की बौछार से गीला कर दिया और कभी-कभी उस पर बरस भी पडे। यह बात नही कि ऐसा करने मे सारा दोष शर्माजी का ही रहा हो, किन्तु इस समय शर्माजी दूसरो के दोषो पर नही, स्वय अपने दोषो और अपनी त्रुटियो पर अभिभूत हो रहे थे।

ऐसी परिस्थितियो मे जब पूरे उनचास दिनो के पश्चात् मीरा को पथ्य दिया जाने लगा, तो इसे उन्होने बच्चो का भाग्य समझ, एक हल्के संतोष की सॉस ली। जब तक मीरा चलने-फिरने न लगे और पूर्ववत् गृहस्थी का भार वहन न करने लगे, तब तक शर्माजी पूर्ण सन्तोष का अनुभव कैसे कर सकते थे ?

चालीस के मोड पर पहुचकर देवदत्त का मन अब दुनिया की रगीनियों से अपने-आपको बहुत दूर का प्राणी समझने लगा है। पत्नी के बचने की उस समय कोई आशा उन्हे नही रह गई थी। इस दशा मे उसके पुनर्जन्म पर, स्वभावत शर्माजी ने जब अपने ही जीवन के पिछले अध्यायों पर एक दृष्टि डाली, तो सारा जीवन उन्हे किसी हरित-भूमि-सा प्रतीत हुआ।

मन की इस छलना पर देवदत्त को स्वय आश्चर्य हुआ। जिस गृहस्थी मे रहकर देवदत्त अपने जीवन की एक खासी लबी अवधि को, सरसता और रुक्षता, आनन्द और खिन्नता, फूलो और कॉटो, सुखो और दुखो आदि के बीच बिना चुके है, वही गृहस्थी आज उन्हे सुखद स्वप्नो-सी रगीन-ही-रगीन प्रतीत हो रही थी।

सुख के साथ दुख, फूल के साथ कॉटे, आनन्द के साथ खिन्नता और सरसता के साथ रुक्षता का जो समावेश देवदत्त देख चुके है, उन्होने स्वीकार किया कि वह सब तो उसी तरह अनिवार्य और सार्थक है, जिस प्रकार दिन के जगमग उजाले के बाद रात्रि का कुहू अन्धकार।

ईश्वर जब आय का एक द्वार बन्द कर देता है, तब दूसरा भी कही-न-कही खोल देता है। शर्त्त यही है कि मानव कर्महीन होकर निश्चेष्ट न बैठ रहे। और कर्म का जहाँ तक सबध है, शर्माजी घोर कर्मठ है। उनकी कर्मठता ने ही उन्हे 'त्रिवेणी' जैसी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका का सम्पादक बना दिया है। 'त्रिवेणी' के सचालक शर्माजी की सेवाओ से पहले से ही परिचित थे। अवसर देखकर उन्होने शर्माजी की सेवाएँ प्राप्त कर ली।

अर्थोपार्जन ही यदि जीवन के समस्त सुखो का मूलाधार होता, तो शर्माजी का जीवन आज परम सुखी होता। परन्तु अर्थोपार्जन के साथ-साथ कितने ही अभिशाप उनके जीवन पर काली घटाओ की तरह छाए रहते है और उन्हे कभी चैन नही लेने देते। पारिवारिक अस्वस्थता और तज्जन्य अशान्ति उनका कभी पिण्ड नही छोडती।

तरुणाई की शहनाई जब देवदत्त के रोम-रोम से बज उठी थी और मीरा ने उनके जीवन मे सहस्र दीपो-सी जगमग दीवाली का स्निग्ध प्रकाश भर दिया था, तब दुनिया के सभी तरुणो की भॉति देवदत्त भी फूले नही समाए थे। जीवन की रगीनियो का मादक स्पर्श करते हुए उन्होने गार्हस्थ्य जीवन की देहरी पर पग बढाकर अपने-आपको परम सुखी अनुभवी किया था। परन्तु रगीन सपनो का इन्द्रधनुष धीरे-धीरे धूमिल होने लगा और जीवन-नाटक के पट-परिवर्त्तन

उन्हे निरन्तर परेशान करने लगे। वह रात-दिन अभिभूत रहने लगे।

इधर अपने बडे पुत्र हरीश की गतिविधि पर शर्माजी को दिनोदिन असन्तोष रहने लगा है। अशिष्टता, उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता उसमे दिनोदिन बढती जा रही है। अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग और उपार्जन जिस पुत्र के निर्माण मे उन्होने न्योछावर कर दिया, उसकी इस अप्रत्याशित गतिविधि पर उन्हे जो मानसिक क्लेश और अशान्ति होने लगी है, उसका विषाक्त प्रभाव उनके स्वास्थ्य और स्वभाव पर भी पडने लगा है। धीरे-धीरे उनका शरीर कृश और दुर्बल होने लगा है और स्वभाव एकदम चिडचिडा। तनिक-तनिक-सी बात पर अब शर्माजी खीझ उठते है।

यह सब स्वाभाविक ही था। जिस पुत्र की साधारण-असाधारण सभी माँगो को देवदत्त ने पूरा करने मे कभी कुछ उठा न रक्खा हो, उसकी ओर से किसी भी अशिष्टता को वह सहन कैसे कर सकते ?

एक दिन की बात है। शर्माजी अपनी डैस्क पर झुके सदा की तरह कुछ लिख रहे थे। सहसा हरीश आया और बोला—'दादा, एक खुश-खबरी सुनाता हूँ। लेकिन मेरी एक माँग तुम्हे पूरी करनी होगी।'

'क्या माँग है तुम्हारी, बेटा ?' देवदत्त ने कलम रखते हुए पूछा—'आखिर सुनूँ भी वह खुशखबरी ?'

'तो मेरी माँग पूरी कर दोगे न ?' हरीश ने दोहराया।

'वह खुशखबरी तुम्हारी माँग पूरी करने योग्य होगी, तो अवश्य कर दूँगा।'

'है, तभी मै ऐसा कह रहा हूँ।'

'क्यो नही, तुम बी० ए० मे पढ रहे हो और तर्कशील भी हो, अत. तुम्हारी माँग तर्कसगत होनी ही चाहिए।'

'तो सुनो, प्रान्तीय सरकार ने तुम्हे और माँ को दो पुस्तको पर एक हजार रुपए का पुरस्कार प्रदान किया है। अभी-अभी मै अखबार मे पढकर आ रहा हूँ।'

'ईश्वर को धन्यवाद!' देवदत्त ने कहा—'जब हमे एक हजार रुपया

मिला है, तो तुम्हारी माँग मैं अवश्य पूरी करूँगा। सुनूँ तो क्या है वह माँग ?'

'एक बढिया रेडियो ले दो, दादा !'

'अवश्य ले दूँगा।'

और पुरस्कार की रकम मिलते ही शर्माजी ने चार सौ रुपए का एक रेडियो-सेट खरीद दिया। यद्यपि पत्नी ने बहुत रोका कि अभी लडके की उच्च शिक्षा का बोझिल खर्च हमारे सिर पर है, उसका ब्याह भी अब किसी दिन शीघ्र ही करना होगा। ऐसी दशा मे रेडियो पर इतना रुपया बहाना ठीक नही। परन्तु देवदत्त ने कहा—'ईश्वर सब पूरा करेगा। मेरी स्थिति तो ऐसी है नही कि लडके के लिए रेडियो खरीद सकूँ। परन्तु ईश्वर ने एक हजार रुपया दिया है, तो लडके की इस अभिलाषा पर क्यो तुषारपात करूँ ? वह भी कभी कहेगा कि दादा ने अपनी स्थिति से बाहर खर्च कर उसकी माँगे पूरी करने मे कभी कुछ उठा नही रक्खा था।'

लेकिन हरीश ने ऐसा कभी नही कहा, कभी नही सोचा, उलटे शर्माजी को पग-पग पर क्लेश देने का ही निन्दनीय कर्म किया। इसीलिए शर्माजी इस पुत्र की ओर से रात-दिन परेशान रहने लगे है।

कभी-कभी शर्माजी को लगता है, रेडियो खरीदकर उन्होने अच्छा नही किया। रेडियो पर सदा फिल्मी गीत सुन-सुनकर ही शायद हरीश के सस्कार दूषित हो उठे है। परन्तु यह विचार अधिक देर तक टिक न पाता। उन्हे लगता कि आज घर-घर रेडियो-सैट है और सभी लडके रेडियो के फिल्मी गीत सुनते है, किन्तु सभी लडके हरीश की भाँति उच्छृङ्खल और माता-पिता को कष्ट देनेवाले नही होते। यह सब तो अपने-अपने भाग्य का खेल है—पूर्व जन्म के कृत्यो का फल।

इन्ही विचार-धाराओ पर शर्माजी तिर रहे थे कि छोटा बच्चा शम्भु आकर उनसे झूम गया और बोला—'चलो दादा ! कहानी सुनाओ। नीद आ रही है मुझे।'

और नित्य की भाँति देवदत्त शर्मा अपने छोटे बच्चे शम्भु को लेकर बिस्तर

पर जा लेटे और उसे परियो की मनोरजक कहानियाँ सुनाने लगे।

जब शम्भु सो गया, तो देवदत्त पुन यह सोचकर अभिभत हो उठे कि यह बच्चा तो इतना छोटा है कि जब तक बडा होगा और इससे किसी सुख-सतोष की अपेक्षा की जा सकेगी, तब तक शर्माजी के इस दुनिया मे कूच कर जाने का समय बहुत ही निकट आ चुकेगा। सुख-सतोप की आशा आज के युग मे प्रथम सन्तान से ही की जा सकती है, किन्तु हरीश ने इस आशा पर एकदम तुषारपात कर दिया है।

यही सब सोचते-विचारते शर्माजी भी सोने की चेष्टा करने लगे।

—१०—

कजला से जलपान का निमन्त्रण पाकर सुमित्रा की सारी उदासीनता दूर हो गई। आज सुबह से जिस प्रफुल्ल को लेकर वह उलझ रही थी, उसीका स्नेह-सिक्त निमन्त्रण पाकर उसकी सारी उलझन तिरोहित हो गई।

नलिनी से जिसकी उदारता की कहानी सक्षेप मे वह सुन चुकी थी, जिसके आकर्षक व्यक्तित्त्व को सुमित्रा अपनी आँखो देख चुकी थी, और जिसकी प्रशसात्मक वाणी ने उसे सहसा मुग्ध कर लिया था, उसी प्रफुल्ल द्वारा जलपान का आमत्रण पाकर सुमित्रा का रोम-रोम पुलकित हो उठा। आत्मविभोर होकर वह बहुत देर तक जाने क्या-क्या सोचती रही।

सहसा उसे अपने दिवगत पिता का स्मरण हो आया। कितनी आत्मीयता से उसके पिताजी कहा करते थे—'सुमित्रा, तुझे पढा-लिखाकर और एक कालेज मे अध्यापिका नियुक्त करा देने के बाद अब केवल एक चिन्ता और रह गई है।'

पिताजी की इस चिन्ता को सुमित्रा न समझती हो, सो बात नही। फिर भी भोलेपन के साथ वह पूछ बैठती—'वह क्या पिताजी ?'

'अरे, तू इतनी बडी हो गई, लेकिन कुछ भी नही समझती ! भारतीय परिवार की कोई भी बेटी, चाहे वह कितनी ही लाडली क्यो न हो, सदा माता-पिता की छाया मे नही रह सकती।' और अत्यन्त करुण तथा धीमे स्वर से वह गुनगुना उठते थे—'बाबुल का घर छोडके गोरी, हो गई आज परायी रे !'

पिता की यह बात सुन, सुमित्रा उनके कन्धे से झूम उठती और कहने लगती थी—'कहाँ परायी हो गई, बाबा! यह रही तुम्हारी गोरी तुम्हारे घर मे—तुम्हारी छाया मे, और सदा रहेगी तुम्हारे पास !'

'न बेटी !' पिताजी अचानक सजल हो उठनेवाली अपनी आँखो को पोछते हुए कह उठते थे– 'यह कैसे हो सकता है ? इससे मुझे सन्तोप न होगा। दुनिया मे जब तक तुझे दुनियादारी के उपकरणो और सुखो के बीच मे न देख लूँगा, तब तक मेरी आत्मा को सन्तोष न मिल सकेगा।'

आत्मा! सन्तोष!!

सुमित्रा की आँखे एकदम गीली हो उठी। सहसा उसकी दृष्टि सामने दीवार पर लटकते महात्मा गान्धी और बुद्ध के भव्य चित्रो पर जा अटकी। रूमाल से उसने अपनी गीली आँखे पोछ ली और अपने दिवगत पिता को मौन-मूक श्रद्धाजलि अर्पित कर दी।

सुमित्रा को लगा कि वह बडी अभागिन है। अपने स्नेहशील पिता की अन्तिम इच्छा को वह उनके जीवन-काल मे कभी पूरा न कर सकी। लेकिन वह करती क्या ? जब कोई उचित जीवन-साथी मिलता, तभी न पिता की इस इच्छा को वह पूरा कर सकती! और, कौन जानता था कि उसके पिताजी की यह इच्छा उनके जीवन-काल मे कभी पूरी न हो सकेगी—मृगजल ही बनी रहेगी।

लेकिन अपने पिता की उस अधूरी इच्छा को वह पूरा अवश्य करेगी। उसे करना ही होगा। नही करेगी, तो पिताजी की आत्मा को सन्तोष कैसे मिलेगा ? उनकी अतृप्त आत्मा को परलोक मे वह परेशान नही रखना चाहती। उनके जीवन-काल मे यदि परिस्थितियो-वश, वह उन्हे सन्तोष नही दे सकी, तो अब अवश्य देगी।

सुमित्रा को याद आया, नलिनी ने एक दिन उससे ऐसा ही प्रश्न किया था—'बहिन, तुम क्या सदा कुमारी रहोगी ?'

'तो क्या कुमारी रहकर जीवित रहना सम्भव नही, जीजी ?' सुमित्रा ने सहज-सरल मुद्रा से कह दिया था।

'सम्भव क्यो नही, बहिन !' नलिनी ने ध्यानपूर्वक सुमित्रा को देखते हुए उत्तर दिया था—'परन्तु ससार मे आकर सासारिकता के अनुभव से शून्य रहना, जीवन की अमूल्य निधियो से वचित रह जाना है।'

और, सुमित्रा ने उसी दिन पहली बार अनुभव किया था कि उसके पिताजी क्यो उसे विवाहित देखना चाहते थे। तभी उसने मन-ही-मन सकल्प कर लिया था कि वह अपने पिताजी की अधूरी इच्छा को किसी स्वर्ण-सयोग के हाथ लगते ही अवश्य पूरा करने की चेष्टा करेगी।

परन्तु आज प्रफुल्ल घोष द्वारा जलपान का आमन्त्रण पाकर यह सब भावनाएँ सुमित्रा के अन्तस्तल मे क्यो सहसा उमडने-घुमडने लगी ? बहुत कुछ सोचने-समझने पर भी सुमित्रा इस प्रश्न का उत्तर न खोज सकी। केवल इतना ही उसे लगा कि यह सब तो आनेवाला समय ही बतला सकेगा। वह इस सम्बन्ध मे भला, क्या कह सकती है !

और तभी सुमित्रा को ध्यान आया कि अरे, कजला तो कभी की चली गई, लेकिन वह यह कहाँ पूछ सकी कि उसकी भाभी कैसी है, कहाँ है, अथवा है भी या नही। परन्तु उसकी बौद्धिक नारी ने उसे फिर झकझोर दिया—किसी पर-पुरुष के सम्बन्ध मे, उसकी पत्नी को लेकर कोई पूछताछ करना, एक कुमारी के लिए कहाँ तक उचित होगा ?

सुमित्रा अपनी कुर्सी से सहसा उठ बैठी। कमरे के बाहर वह जा खडी हुई और विद्यालय का निरीक्षण करने चली गई।

उस दिन इसी तरह दो बज गए। वह अपने कमरे मे जाकर फिर बैठ गई। कजला की वह बात सुमित्रा को भली भाँति याद थी—'दादा भी सम्भवत दो बजे के बाद आपको टेलीफोन द्वारा निमत्रण देगे।'

कुछ देर तक सुमित्रा रगीन विचार-तरङ्गो पर तिरती रही कि सहसा

टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। जान-बूझकर उसने टेलीफोन का रिसी-वर शीघ्रतापूर्वक हाथ मे नही लिया। इस टनटनाहट के साथ-साथ सुमित्रा की हृदय-तन्त्री का तार-तार खिचता-सा प्रतीत हुआ। एक अविदित-सा आह्लाद उसके रोम-रोम मे व्याप्त हो उठा। तभी उसे लगा कि यह टेलीफोन प्रफुल्ल का न होकर अन्य किसी का भी तो हो सकता है। और, इस भावना के उदय होते ही उसने तत्काल टेलीफोन का रिसीवर अपने दाहिने हाथ से उठा लिया और उसका एक छोर दाहिने कान के निकट तथा दूसरा छोर ओठो के निकट ले जाकर कहा—'हल्लो! आप कहाँ से बोल रहे है?'

'मै यही—इलाहाबाद—से बोल रहा हूँ। गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या कुमारी सुमित्राजी से बात करना चाहता हूँ।'

सुमित्रा यद्यपि प्रफुल्ल घोष से कल रात मे एक बार बातचीत कर चुकी थी, परन्तु टेलीफोन पर यह उसकी ही आवाज है अथवा नही, इसका कोई निश्चय न कर सकी। इसलिए उसने कहा—'मै ही सुमित्रा हूँ। आपका शुभ नाम?'

प्रफुल्ल मन-ही-मन पुलकित हो उठा। सुमित्रा की मधुर वाणी पर मुग्ध होते हुए उसने कहा—'ओह! क्षमा कीजिए, मैने अब तक अपना नाम नही बतलाया. . !'

बीच मे ही सुमित्रा बोल उठी—'आपने कोई अपराध नही किया कि क्षमा-याचना की आवश्यकता हो। फोन पर यह होता ही रहता है।'

'मै प्रफुल्ल घोष हूँ।' टेलीफोन के दूसरे छोर से आवाज आई।

सुमित्रा को यह नाम सुनते ही रोमाच हो आया। जिसे लेकर वह कल रात से अब तक नाना प्रकार के कल्प-वयन मे उलझी रही, वही टेलीफोन पर बोल रहा है। सुमित्रा ने कहा—'ओह! आप है! नमस्कार!'

'नमस्कार! आपसे एक निवेदन कर रहा हूँ।'

'आदेश कीजिए!' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'आप इस विद्यालय के अनन्य सहायक हैं।' इस समय सुमित्रा यह भूल ही गई कि प्रफुल्ल अपनी बहिन कजला द्वारा पहले ही अपना निवेदन उसके पास भेज चुका है।

'क्या आज सन्ध्या समय आप हमारे यहाँ आकर जलपान करने की कृपा कर सकेंगी?' प्रफुल्ल ने अपने स्वर मे सारी मधुरता और नम्रता भरकर कहा।

'आपका निमत्रण कजला मुझे पहले ही दे चुकी है।' सुमित्रा ने कहा।

'लेकिन आपकी स्वीकृति तो अब तक ।' बीच मे ही प्रफुल्ल ने कुछ कहना चाहा।

सुमित्रा ने भी बीच मे ही उसे टोक दिया—'आपके स्नेह-सिक्त निमत्रण को क्या मै अस्वीकार करने की धृष्टता कर सकती हूँ?'

'यह आपका सौजन्य है, अन्यथा ऐसे निमत्रण तो आपको नित्य ही मिलते होगे।'

'जी नही!' सुमित्रा ने कहा—'स्नेह-सिक्त निमत्रण बहुत कम मिलते है। कदाचित् यही कारण है कि मै सभी निमत्रण स्वीकार नही कर पाती।'

'तो यह मेरा सौभाग्य है कि आपने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया!' प्रफुल्ल ने एक क्षण रुककर पूछा—'आप किस समय आ सकेगी?'

'जब आप बुलावे।'

'छ बजे ठीक होगा?'

'मुझे कोई असुविधा न होगी!'

'तो मेरी कार आपको लेने साढे पाँच बजे पहुँच जाएगी। साथ मे कजला भी रहेगी, जिससे आप मेरी कार पहचान सके।'

'हाँ, यह व्यवस्था करना ही ठीक होगा। कही कोई दूसरे सज्जन उसी

समय अपनी कार भेजकर मुझे बहका न ले जाएँ।' सुमित्रा ने कहा।

टेलीफोन के दूसरे छोर पर हँसी का फव्वारा छूटता सुनाई पड़ा। हँसी रोककर प्रफुल्ल ने कहा—'यह आपने खूब कहा! अजी, आप जैसी आचार्या को कौन बहका सकता है!'

'अच्छा, मैं तैयार रहूँगी।'

'अनेक धन्यवाद!' और प्रफुल्ल ने रिसीवर रख दिया।

सुमित्रा ने भी अपने फोन का रिसीवर यथास्थान रख दिया। एक अभूत-पूर्व प्रसन्नता से भरकर सुमित्रा का मन-मयूर नाच उठा। सामने रखे हुए रेडियो का स्विच उसने दबा दिया। किसी मधुर कण्ठ का स्वर सुमित्रा के कमरे के सूने आलम में गूँज उठा—'पिया-मिलन को जाना!'

—११—

छोटा बच्चा शम्भु जब कहानी सुनते-सुनते सो गया, तब देवदत्त स्वय सोने की चेष्टा करने लगे, किन्तु उनकी झपकी शीघ्र ही टूट गई। इसका एक कारण था। बडा बच्चा हरीश अपनी छोटी बहिन लज्जावती को पढा रहा था। गणित का कोई प्रश्न था, जिसे लज्जा हल करना चाहती थी, परन्तु उसकी बाल-बुद्धि उसका साथ नही दे रही थी। उधर पढानेवाला खीझ-खीझ उठता था। उसकी यह खीझ लज्जा पर रह-रहकर चाँटे बरसा रही थी। लगातार जब कई चाँटे हरीश ने उसे रसीद कर दिए, दो वह चीख उठी। उसकी इसी चीख से देवदत्त की झपकी टूट गई।

झपकी टूट जाने पर भी पहले तो देवदत्त कुछ क्षणो तक चुपचाप पलग पर लेटे रहे, किन्तु हरीश के चाँटे रसीद करने की गति जब उत्तरोत्तर बढने लगी, तो उनकी आत्मा चीख उठी और पलग से उछलकर वह हरीश के पास जा पहुँचे। क्रोध से तमतमाते हुए शर्माजी बोले—'हरीश, मै देख रहा हूँ, आज तुम्हारा हाथ लज्जा पर अनियत्रित होकर छूट रहा है। अभी-अभी तुम उसे कई चाँटे रसीद कर चुके हो। क्या इसी तरह पढाया जाता है छोटे बच्चो को ?'

'हाँ, इसी तरह पढाया जाता है।' हरीश ने तनकर कहा—'जब कोई बात उसकी समझ मे ही नही आती, तो . ।'

'तो मारने के सिवा और क्या किया जा सकता है !' देवदत्त बीच मे ही चीख उठे—'यही न ?'

'हाँ !' हरीश ने किसी महामहोपाध्याय की मुद्रा बनाकर तीखा उत्तर दिया।

देवदत्त की क्रोधाग्नि मे यह लडका इसी तरह आहुति छोडने का अभ्यस्त हो रहा है। पिता को क्रोधित देखकर तनिक भी शान्त होना यह जानता ही नही। देवदत्त ने क्षुब्ध होकर कहा—'यदि इसी तरह मैने तुम्हे पढाया होता, तो शायद ऐसा उत्तर तुम कभी न दे सकते।'

'मै ऐसा मूर्ख नही था, जैसी यह लज्जा है। मै कभी ऐसी भूल नही करता था।' हरीश ने इस ढग से कह दिया, मानो वह त्रिकालदर्शी हो और अपने बचपन की सारी बाते उसे ज्ञात हो।

'चुप रह, शैतान ! मुहफट कही का !' देवदत्त ने गरजते हुए कहा।

लज्जा जोरो से सिसक रही थी। उसके सिर पर अपना स्नेहसिक्त हाथ फेरते हुए देवदत्त ने कहा—'मत पढो इस शैतान से। चलो, हम पढाए देते है, बेटी !'

गणित का जो प्रश्न लज्जा हल कर रही थी, उससे मिलता-जुलता एक छोटा और सरल, किन्तु सर्वथा भिन्न राशि का मौखिक उदाहरण देकर देवदत्त ने जब सकेत दिया, तो लज्जा की समझ मे वह जटिल प्रश्न सहज ही आ गया और उसने तत्काल उसे हल कर दिया।

यह देख हरीश से चुप न रहा गया, बोल उठा—'इस तरह प्रश्न हल करा देने से वह कभी कुछ न समझ सकेगी—मूर्ख ही बनी रहेगी।'

'तो यह कहो कि अब तुम शिक्षा-पद्धति के भी पण्डित हो गए हो ?'

'शिक्षा-पद्धति के किसी पण्डित से जाकर पूछ लो कि मेरी बात गलत है या सही !' हरीश ने अपने पिता की क्रोधाग्नि मे और घी छोड दिया।

'चुप रहो, हरीश ! तुम बी० ए० मे क्या पढने लगे हो, अपने-आपको बृहस्पति समझने लगे हो। तुम्हे आखिर यह भी तो मालूम नही कि पिता की कोई मर्यादा होती है और उससे बात करने का भी एक ढंग होता है।

मुझे स्वप्न मे भी तुमसे इस अशिष्टता की दुराशा नही थी। लेकिन मैं देख रहा हूँ, तुम्हारी यह अशिष्टता दिनोदिन बढती जा रही है।'

'यह सब असीम लाड-दुलार का दुष्परिणाम है।' देवदत्त की क्रोधपूर्ण झल्लाहट सुनकर उनकी पत्नी मीरा ने इस उत्तेजित घटना-स्थल पर आकर कहा—'छोटे से ही उसे मुँह लगा रक्खा है, अब मर्यादा और शिष्टता का पाठ पढाने चले है।'

'हरीश को बिगाडने मे तुम्हारी ऐसी बातो ने भी बडा योग दिया है। लाख बार कहा कि ऐसे मौको पर बीच मे मत बोला करो। हटो यहाँ से।' देवदत्त ने चीखते हुए कह दिया और खुली छत पर जाकर टहलने लगे।

युग-युग से सॅजोई गई आशाओ के विपरीत यदि मधुर आम फलने के समय किसी वृक्ष मे बबूल के तीखे कॉटे फूट निकले, तो उस वृक्ष को रोपने-वाले की सारी अभिलाषाओ का महल सहसा ध्वस्त हो जाता है। तब उसे अतीत का एक-एक क्षण न केवल साकार-सा नाचता दिखलाई पडता है, प्रत्युत सवाक् चित्रपट की भॉति तरह-तरह की ध्वनियाँ भी उसके आसपास गूँजती-सी प्रतीत होती है और उसे अर्द्धविक्षिप्त-सा कर जाती है।

आज की इस घटना ने देवदत्त की मनोदशा मे ऐसा ही ज्वार उत्पन्न कर दिया है। दिन-भर के अविराम परिश्रम से देवदत्त इतने श्रान्त-क्लान्त हो जाते है कि कार्यालय से लौटकर भोजन करके वह एकदम लेट रहते है।

देवदत्त चालीस को पार कर चुके है। यो चालीस वर्ष की अवस्था ऐसी नही, जिसे बुढापे की सज्ञा दी जा सके। परन्तु दूसरे महायुद्ध के बाद हमारे देश मे मध्यम श्रेणी के बुद्धिजीवियो का जीवन, जिन विकट सघर्षो का केन्द्र बनकर रह गया है, उनमे पिसकर आज का पुरुष असमय ही बुढापे का शिकार होने लगा है। दिन-रात परिश्रम किए जाओ, फिर भी दैनिक आवश्यक-ताओ की पूर्त्ति नही। इस दशा मे शरीर की कोई क्या चिन्ता कर सकता है? फिर भारतीय परिवारो का यह अभिशाप है कि प्रमुख सदस्य पर ही अर्थोपार्जन का सारा दायित्त्व रहता है। एक सदस्य कमावे और बाकी

सबके सब उस पर आश्रित रहे। तब अर्थोपार्जन करनेवाले का यही कर्त्तव्य रह जाता है कि वह अपने शरीर से अधिक अपने आश्रितो की चिन्ता करे और इसी चिन्ता—चिता पर तिल-तिलकर जलते हुए अपना जीवन भस्म करता रहे।

देवदत्त यही सब कर रहे है। इसीलिए चालीस को पार करते-करते वह बुढापे का अनुभव करने लगे है। उनके सिर के प्राय सभी बाल सफेद हो चुके है। दाँत भी बहुत से गिर चुके है या उखडवा देने पडे है। उनका शरीर भी अब पहले की भाँति परिश्रम नही कर पाता। इसीलिए सध्या मे भोजन करके वह चुपचाप लेट रहते है और चाहते है कि उन्हे कोई दिक न करे, उनकी भावनाओ पर कोई किसी प्रकार का प्रहार न करे। परन्तु उनके चाहने से क्या होता है ? परिवारवाले जब उनकी इच्छा-अनिच्छा का ध्यान रख सके, तब न उन्हे कोई शान्ति मिले।

खुली छत पर टहलते-टहलते देवदत्त ने आकाश की ओर देखा, तो पाया कि सावन के महीने मे भी निरभ्र आकाश हँस रहा है, तारे जगमगा रहे है। उन्हे लगा कि आजकल ऋतुओ मे भी कैसा परिवर्त्तन होने लगा है। सावन-भादो मे जब ऐसी घनघोर घटाएँ होनी चाहिए कि हाथ को हाथ न सूझ सके, तब तारे जगमगा रहे है। जब वर्षा के पानी से आजकल सर-सरिताओ मे कूल-किनारो का अतिक्रमण करनेवाली बाढ होनी चाहिए, तब पिछले पन्द्रह-बीस दिनो से पानी की एक बूँद के लिए भी यह धरती तरस रही है।

देवदत्त के अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि जब प्रकृति के विधान मे इतना परिवर्त्तन होने लगा, तब मानव-प्रकृति के परिवर्त्तन को आश्चर्य-जनक नही कहा जा सकता।

अपने अन्तर के अवसाद से अभिभूत होकर देवदत्त फिर पलग पर जा लेटे। रह-रहकर उन्हे हरीश की बढती हुई अशिष्टता कुरेदने लगी। कितनी आशाओ का केन्द्र मानकर उन्होने इस हरीश को पाला-पोसा और अब तक अपना

मे पोशाको की तडक-भडक जितनी दर्शनीय रहती है, और सिनमा तथा रेडियो के गीत सुनने तथा उन्हे गुनगुनाने की जितनी रुचि पाई जाती है, उतनी ही अपने माँ-बाप और देश-समाज के प्रति कर्त्तव्य-भावना की उपेक्षा देखी जाती है।

परन्तु देवदत्त शर्मा के मन ने पलटा खाया। उन्हे लगा कि कुछ छात्रो मे यदि ये त्रुटियाँ पाई जाती है, तो यह क्यो समझ लिया जाए कि विश्वविद्यालय फैशनपरस्ती और उच्छृङ्खलता सिखलाने के केन्द्र बन रहे है? जिन छात्रो मे ये त्रुटियाँ पाई जाती है, उनकी परिस्थितियाँ और उनका वातावरण ही क्यो न इसके लिए उत्तरदायी समझा जाए? और तभी देवदत्त को स्मरण आया कि अभी-अभी उनकी पत्नी ने भी ऐसी ही कोई बात कही थी। क्या बात कही थी मीरा ने ? मस्तिष्क पर तनिक-सा जोर देते ही उन्हे स्मरण आ गया। मीरा ने कहा था—'यह सब असीम लाड का फल है।'

एक प्रश्नचिह्न और उसकी वक्रता देवदत्त-के सामने साकार सी होकर नाच उठी। असीम लाड? उन्होने स्वीकार किया कि निश्चय ही किसी सीमा तक उनके लाड-दुलार का दुष्परिणाम ही इसे कहा जा सकता है। हरीश उनका ज्येष्ठ पुत्र है —प्रथम सन्तान। अपने दाम्पत्य जीवन की तरुणाई के इस प्रतिबिम्ब को उन्होने निश्चय ही लाड-दुलार के साथ पाला-पोसा और पढाया-लिखाया है। उसकी साधारण-असाधारण किसी भी माँग को देवदत्त ने अपनी स्थिति की चिन्ता न कर किसी भी मूल्य पर पूरा करने मे कभी कुछ उठा नही रक्खा। परन्तु यह सब क्या उन्होने इसीलिए किया था कि पुत्र जब पढ-लिखकर बडा होगा, सभ्य होगा और देवदत्त की बराबरी का होगा, तब पिता के साथ वह किसी भी शिष्टता और व्यावहारिकता का ध्यान न रखेगा? तो क्या पुत्र का जन्मोत्सव मना लेना ही पिता के समस्त अपेक्षित सुखो और आशाओ का आदि-अन्त होता है? नही! देवदत्त का अन्तर्मन यह सब स्वीकार नही कर सकता।

पुत्र के जन्म पर प्रसन्नता मनाने का अर्थ यही होता है कि बड़ा होकर, पढ-लिखकर पुत्र अपने माता-पिता के प्रति समस्त कर्त्तव्यो का ध्यान रखते हुए उन्हे आत्मीय सन्तोष प्रदान करेगा, बुढापे की लाठी बनकर माता-पिता को सहारा देगा और यशस्वी बनकर अपने पिता के नाम को गौरवास्पद बनाएगा। यदि ये सब बाते किसी पुत्र से पिता को प्राप्त नही होता, तो न पुत्र का जन्म सार्थक है, न पिता का जीवन।

माना कि देवदत्त ने हरीश को असीम लाड-दुलार से पाला-पोसा है। परन्तु उन्होने यह आशा भी बाँध रक्खी थी कि ाडा होने पर पुत्र मे कम-से कम इतनी समझ तो आ ही जाएगी कि पिता के साथ उसे किस प्रकार बात करनी चाहिए। लेकिन देवदत्त ने अपनी इस आशा के सर्वथा विपरीत दिशा मे जब हरीश को जाते देखा, तब अनेक बार उन्होने इसी बात को लेकर न केवल लम्बा-चौडा लैक्चर दे डाला, बल्कि प्यार से और कभी-कभी क्रोध से झल्लाकर भी उसे उचित मार्ग दिखलाने का प्रयत्न किया। परन्तु हरीश पर किसी बात का प्रभाव नही पडा।

देवदत्त यह देख हैरान है कि अपने भाई-बहिन के प्रति भी इस हरीश मे कोई आत्मीयता नही है, बल्कि एक ईर्ष्या की दुर्भावना ही जब-तब उसने प्रकट की है। एक बार हरीश ने अपने छोटे भाई शम्भु का उल्लेख करते हुए देवदत्त से स्पष्ट शब्दो मे कहा था—'मै और शभु दोनो तुम्हारी दृष्टि मे समान होने चाहिएँ। परन्तु देखता हूँ, तुम मेरी तनिक-सी गलती पर भी बेहद बिगड जाते हो।'

देवदत्त ने अपना दृष्टिकोण समझाते हुए हरीश से कह दिया था—'शम्भु छोटा है—नासमझ है। तुम बी० ए० के छात्र हो। तुम्हारे और शम्भु के प्रति मेरा एक-सा रुख हरगिज नही रह सकता। शम्भु अपने अज्ञान के कारण मेरी दृष्टि मे क्षम्य है, परन्तु तुम्हारी गलती को मै गलती नही, उच्छृङ्खलता और उद्दण्डता समझता हूँ, क्योकि तुम्हे अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन तुम बेवकूफी करते हो, पिता की मर्यादा का ध्यान नही

रखते और मेरे लाख बार समझाने पर भी अपनी वाणी मे मधुरता नही ला सकते। ऐसी दशा मे यह आशा करना व्यर्थ है कि शम्भु और तुम दोनो मेरी दृष्टि मे समान रहोगे। तुम छोटे थे, तब तुम्हे भी मैने असीम लाड-दुलार से रखा। परन्तु उसका प्रतिदान यह नही है कि मेरी प्रत्येक बात का तिक्त उत्तर तुम दिए जाओ, और कभी मै रोग-शय्या पर पडा रहूँ, तो तुम मेरे सिरहाने बैठकर मुझसे दो बाते करने की भी आवश्यकता न समझो।'

इस उत्तर को सुनकर भी हरीश के मुख से ऐसा एक भी शब्द नही निकला, जिसे सुनकर देवदत्त के अन्तर की विकलता, उनके प्राणो का हाहाकार और उनकी आत्मीयता की अकुलाहट को किंचित् सन्तोष का अनुभव हो सकता।

देवदत्त की आकुलता और बढने लगी। उन्होने स्वीकार किया, आजकल के लडके अपने माँ-बाप को पग-पग पर पीडित करने की मानो शपथ ले चुके है। लाड-दुलार, पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि का कर्त्तव्य पिता पूरा कर दे, बस इसके बाद पुत्र का कोई कर्त्तव्य नही रह जाता। पता नही, आजकल के लडको को क्या होता जा रहा है कि बुजुर्गो को कुछ समझते ही नही। ये लडके अपने माता-पिता और बुजुर्गों के प्रति जितने अविश्वसनीय और अव्यावहारिक हो उठे है, उतने पहले कभी नही थे।

एक दिन की बात है। देवदत्त अपने दो दाँत उखडवाकर पीडा से कराहते हुए जब डेण्टिस्ट के यहाँ से लौटकर घर आये, तो हरीश से कहा—'भैय्या, तनिक बाजार जाकर नीद लानेवाली दो गोलियाँ ला दो, जिससे मै चुप-चुप सो सकूँ।'

'लाए देता हूँ।' कहकर हरीश ऊपरी कमरे मे गया और रेडियो खोलकर फिल्मी गीत सुनने लगा।

देवदत्त का क्रोध और परिताप सीमा को पार कर गया। उन्हे लगा कि इस दुष्ट पुत्र को पिता की कराहना और पीडा की

भी कोई चिन्ता नही। पुत्र स्वय चिन्ता नही करता, यही देवदत्त का दुर्भाग्य है, किन्तु कहने पर भी उपेक्षा दिखलाता है, यह तो घोर दुर्भाग्य है ! देवदत्त उसी तरह कराहते हुए उठे ओर साइकिल पर स्वय बाजार जाकर गोलियाँ ले आए। हरीश ने फिल्मी गीतो के सामने पिता की पीडा और कराहना की कोई परवाह नही की।

इस घटना का स्मरण आते ही देवदत्त की आत्मा चीख उठी। उन्होंने अपना बिगडता बुढापा प्रत्यक्ष देखा और दुर्भाग्य के थपेडो की पीडा से सिसकते हुए पता नही, कब सो गए।

—१२—

पूर्व निर्धारित समय पर प्रफुल्ल घोष की कार, गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या कुमारी सुमित्रा को लेने आ पहुँची। कार मे ड्राईवर के साथ प्रफुल्ल की बहिन कजला भी थी।

कजला को देखते ही सुमित्रा मन-ही-मन प्रसन्नता से भर उठी। तो प्रफुल्ल-जी अपने दिए गए वचन की रक्षा करना अच्छी तरह जानते है। यही होना चाहिए। मानव की महत्ता और सज्जनता का यह सबसे बड़ा लक्षण है।

सुमित्रा पहले से ही तैय्यार हो चुकी थी। कजला के पहुँचते ही वह शीघ्र चल पडी। सुमित्रा ज्योही कार पर बैठी, ड्राईवर ने कार दौड़ा दी। हवा से बाते करती—सनसनाती हुई कार कुछ ही मिनटो मे प्रफुल्ल की हवेली मे जा पहुची।

अहाते मे प्रवेश करते ही कार पर बैठे-बैठे ही सुमित्रा ने देखा, वह हवेली आधुनिक ढङ्ग की और दर्शनीय है। सामने के भाग मे एक सुन्दर उपवन रग-बिरगे, देशी-विलायती पुष्पित पौधो को अपने अङ्क मे समेटे मुसकरा रहा है। हवेली का ऊपरी भाग काफी ऊँचा है, जिस पर लगे हुए लम्बे बॉस यह सूचित कर रहे है कि हवेली मे रहनेवाले रेडियो के शौकीन है।

कार के रुकते ही प्रतीक्षारत प्रफुल्ल ने स्वय हवेली के बरामदे से बाहर आकर सुमित्रा का स्वागत करते हुए कहा—'आइए, सुमित्राजी!'

दोनो हाथ जोड सुमित्रा, प्रफुल्ल के अभिवादन का मौन उत्तर देते हुए मुस-करा उठी और कार से उतरकर प्रफुल्ल के साथ चल पडी। कजला की छोटी बहिन रेणुका भी इसी बीच भीतर से सहसा आ गई और अपनी आचार्या सुमित्रा-

जी को उसने भी प्रसन्न मुद्रा से दोनो हाथ जोडकर अभिवादन किया।

'जीती रहो, बेटी!' सुमित्रा ने कहा और उसके सिर पर अपना हाथ धरते हुए पूछा—'अब तक कहाँ थी, रेणुका?'

'जी, मै आपके जलपान की तैयारी देख रही थी भीतर।' रेणुका ने मन्द स्मित के साथ कह दिया।

कजला ने तभी रेणुका को एक चिकोटी लेकर मानो ऐसा कहने से रोक देने की चेष्टा की। रेणुका चौक उठी और कजला की ओर घूमकर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगी। कजला ने आँखो-ही-आँखो मे उसे कोई सकेत दिया, जिसे शायद वह भली भाँति समझ भी न सकी।

रेणुका को इस प्रकार चौकते देख, सुमित्रा ने कहा—'क्या बात है, रेणुका?'

'जी, कुछ नही।' कहकर रेणुका चुप रह गई। वह कैसे कहती कि कजला ने उसे चिकोटी भरकर चौका दिया है।

सुमित्रा कुछ न समझ सकी। वह चुपचाप प्रफुल्ल का अनुकरण करती हुई अब तक एक बडे-से कमरे मे पहुच चुकी थी। कमरा काफी लम्बा-चौडा और आधुनिक रुचि का प्रतिबिम्ब था। कमरे के बीचोबीच सगमर्मर की चमचमाती एक नेत्ररजक मेज पडी थी। उस मेज के चारो ओर एक-एक कुर्सी मानो किसी आगन्तुक को आसीन करने की प्रतीक्षा मे ललक रही थी। इस मेज के निकट पहुँचते ही प्रफुल्ल ने कहा—'बैठिए, सुमित्राजी!' फिर एक क्षण रुककर कहा—'मै अभी आ रहा हूँ। तब तक आप मेरी इन बहिनो से बात कीजिए।' और मुस-कराता हुआ प्रफुल्ल उस कमरे से बाहर चला गया।

सुमित्रा उस सगमर्मर की मेज के सामने पडी एक कुर्सी पर बैठकर उस कमरे को एक सरसरी दृष्टि से देखने लगी। कमरे की दीवारे हलके आसमानी रङ्ग से रँगी हुई थी। बीच-बीच मे काफी अन्तर पर कुछ तैल-चित्र इन दीवारो की शोभा मे चार चाँद लगा रहे थे। चित्र काफी बडे आकार-प्रकार के थे। भारत को स्वतत्रता दिलानेवाले दिवगत राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी, भारत का मस्तक ससार के साहित्यिको मे गर्वोन्नत करनेवाले दिवगत कवीन्द्र रवीन्द्र, मानव-मात्र

को कर्मयोग का अक्षय सन्देश देनेवाले गीता-गायक भगवान् कृष्ण और महात्मा बुद्ध तथा ईसा के चित्र प्रफुल्ल की व्यक्तिगत सुरुचि का प्रदर्शन कर रह थे। इन चित्रो के अतिरिक्त कुछ प्राकृतिक दृश्यो के भव्य चित्र भी लटक रहे थे। चित्रो को देख, सुमित्रा को लगा कि प्राकृतिक सौन्दर्य की पूजा करनेवाले प्रफुल्ल-जी भारतीय विभूतियो के ही नही, बल्कि मानव का कल्याण करनेवाली विश्व-विभूतियो के भी भक्त है।

दीवारो पर लटकते चित्रो से हटकर अब सुमित्रा की दृष्टि कमरे के फर्श पर रखी वस्तुओ पर भी दौडने लगी। प्रत्येक द्वार पर तरह-तरह की धातुओ के नेत्ररजक दो-दो पात्र सुन्दर तिपाइयो पर रक्खे हुए थे। कही-कही लकडी के बडे-बडे गमलो मे पुष्पित पौधे भी मुसकरा रहे थे और अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से उस कमरे के वातावरण मे एक मस्ती घोल रहे थे।

उत्तर की ओर जो दीवार थी, उसके बीचोबीच नीचे फर्श पर अत्यन्त सुन्दर शीशम की एक मेज रखी थी, जिस पर श्वेत खादी का दूध-सा मेजपोश फैला हुआ था। इस मेज पर किसी तरुणी का अत्यन्त नयनाभिराम चित्र देखकर सुमित्रा क्षण भर के लिए ठगी-सी रह गई। यह चित्र किस तरुणी का है ? मन-ही-मन उसने अनुमान किया कि यह चित्र प्रफुल्ल की पत्नी का होगा। चित्र जिस सुरुचि और श्रद्धा के साथ सजाकर रखा गया है, वह अन्य किसी नारी को इस घर मे दुर्लभ ही समझना चाहिए। सुमित्रा की जिज्ञासा बॉध तोडने लगी। एक बार उसने कमरे मे चारो तरफ दृष्टि फेककर देख लिया कि कही प्रफुल्लजी तो वहॉ नही है। फिर उसने आश्वस्त होकर कजला से प्रश्न किया—'कजला, वह चित्र किसका है ?'

'कौन चित्र, आचार्याजी ?' कजला ने यह निश्चित कर लेना चाहा कि कमरे मे टँगे अनेकानेक चित्रो मे से आखिर उसकी आचार्या किस चित्र का परिचय पूछ रही है।

सुमित्रा ने हाथ के सकेत से वह चित्र दिखलाते हुए कहा—'वह चित्र कजला, जो शीशम की मेज पर सहेजकर रक्खा गया है, जिसके दोनो ओर फूलो

के दो गुलदस्ते मुसकरा रहे है ।' सुमित्रा की दृष्टि अब तक उसी चित्र पर केन्द्रित थी ।

'ओह!' कजला ने कुछ गम्भीर होते हुए कहा—'वह चित्र मेरी भाभी का है, आचार्याजी।'

'तुम्हारी भाभी का!' मन-ही-मन सुमित्रा ने जो अनुमान कर रक्खा था, उसकी सत्यता पर जाने क्यो सहसा चौकते हुए कहा—'चलो, तनिक निकट से देख लूँ उन्हे।'

'अवश्य देखिए, सुमित्राजी!' सहसा प्रफुल्ल ने उस कमरे मे आकर कहा और स्वय उस चित्र की ओर चल पडा।

सुमित्रा मन-ही-मन अप्रकट सकोच और लज्जा से भर उठी। क्या सोचते होगे प्रफुल्लजी? कहते होगे, दूसरे की पत्नी को देखने की आखिर इतनी उत्सुकता क्यो? लेकिन दूसरे ही क्षण सुमित्रा ने स्वीकार किया कि प्रफुल्लजी इतना अवश्य समझते होगे कि नारी की यह उत्कण्ठा स्वाभाविक होती है। राजमार्ग पर जाती हुई किसी बारात का दृश्य अथवा नववधू की एक झाकी देख लेने के लिए नारियाँ अपने हाथ का काम छोडकर द्वार से बाहर निकल पडती है। फिर मै तो इनके निकट आ चुकी हूँ। भला, मै कैसे अपनी उत्सुकता दबा सकती हूँ!

दो-चार पग ही सुमित्रा ने उस चित्र की ओर बढाए होगे कि वह सहसा ठिठककर खडी हो गई। किसी अप्रत्याशित-सी दुर्घटना से मानो वह आहत हो उठी हो। तो उसने प्रफुल्ल को लेकर अब तक जो हवाई महल तैयार किए थे, जिन सुनहरी किरणो की झाँकी देखने की आशा बाँध रक्खी थी, वह सब मृग-जल था क्या?

मृगजल? हाँ, मृगजल नही तो क्या है? सुमित्रा को लगा कि वह सचमुच अभागिन है! उसके पिता की अन्तिम इच्छा शायद ही कभी पूरी हो। इस प्रफुल्ल को लेकर अब तक उसने जो ताना-बाना बुना है, वह सब उसे टूटता-सा प्रतीत होन लगा। जब प्रफुल्लजी की पत्नी इस दुनिया मे है, तब यह कैसे हो सकता

है कि किसी अन्य नारी को इस गृह मे . . .? और सभव भी हो, तो स्वय सुमित्रा इसे कदापि पसन्द न करेगी।

तभी सुमित्रा की चिन्ता-धारा मे सहसा एक अवरोध उत्पन्न हो गया। उसने देखा कि प्रफुल्लजी अपनी पत्नी के चित्र के सामने पहुँचकर न केवल अत्यन्त गम्भीर हो उठे है, प्रत्युत उनकी आँखे भी सहसा गीली हो उठी है। मौन-मूक श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए प्रफुल्ल ने ओठों-ही-ओठो मे कुछ कहा भी, परन्तु सुमित्रा कुछ सुन-समझ न सकी।

सुमित्रा अपनी विचार-धारा से छिटककर मानो बहुत दूर जा पडी। उसने सहानुभूति के स्वर मे कहा—'आप इतने गम्भीर क्यो हो उठे, घोष साहब?'

'भाभी का स्मरण आ जाने पर दादा ऐसे ही गम्भीर हो उठते है, आचार्याजी!' यह कजला का स्वर था।

'मेरी भाभी बडी अच्छी थी, आचार्याजी!' यह रेणुका की अभिव्यक्ति थी।

'ओह!' सुमित्रा ने कुछ भरे गले से कहा—'तो इस घर की शोभा अब इस दुनिया मे नही रही?'

'नहीं, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'शैल हम सबको छोड किसी दूसरी दुनिया मे चली गई। ईश्वरेच्छा!'

'वास्तव मे ईश्वरेच्छा के आगे मानव का कोई वश नही चलता।' सुमित्रा ने कहा—'यही समझकर अन्त मे हमे सन्तोष करना पडता है—हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश विधि-हाथ।' और सुमित्रा के मन मे जहाँ प्रफुल्ल की पत्नी का निधन-समाचार सुन, प्रफुल्ल के प्रति सहानुभूति का स्रोत उमड पडा, वही उसके मन की वह शका-चिन्ता भी तिरोहित हो गई, जो अभी-अभी कुछ क्षण पहले उसके मानस मे उद्वेलित हो उठी थी: 'प्रफुल्ल की पत्नी जब इस दुनिया मे है, तब ?' तो क्या उसने जो ताना-बाना बुन रक्खा है,

वह मृगजल नही है ? जिन सुनहरी किरणो को देखने की उसने आशा बाँध रक्खी है, वह कौशल के साथ पग बढाने पर सत्य भी हो सकती है ?

'हाँ, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने कहा—'ईश्वर का अस्तित्त्व ऐसे ही स्थलो पर आकर मानव को स्वीकार करना पडता है। आज के वैज्ञानिक युग मे मानव ने जाने किन-किन रहस्यो का पता लगा लिया है । समुद्र की अगम तली से लेकर न केवल हिमालय की चोटी तक वह पहुँच चुका है, बल्कि चन्द्र, मगल आदि ग्रहो मे भी पहुँचने के प्रयत्न मे वह सफलता का छोर छू रहा है, परन्तु मृत्यु पर विजय प्राप्त करन मे उसे तनिक भी सफलता प्राप्त नही हो सकी।' फिर एक क्षण रुककर उसने यह प्रसङ्ग बदलते हुए कहा—'अच्छा, चलिए, चाय पिएँ हम लोग।'और घूमकर सगमर्मर की मेज की तरफ वह चल पडा।

सुमित्रा भी कजला और रेणुका के साथ कमरे के बीचोबीच पडी उस सगमर्मर की मेज की ओर चल पडी, जिस पर इस बीच प्रफुल्ल के नौकरो ने बगाली मिठाइयो और नमकीन खाद्य सामग्री की तश्तरियाँ सजाकर रख छोडी थी। फलो और चाय की भी व्यवस्था थी।

मेज के निकट पहुँचकर सुमित्रा ने कहा—'ओह ! आपने तो मुझे चाय पिलाने के बहाने पूरा भोजन कराने की व्यवस्था कर रक्खी है !'

सकेत से सुमित्रा को कुर्सी पर बैठने की व्यावहारिकता दिखलाते और स्वय मेज की दूसरी ओर की कुर्सी पर बैठते हुए प्रफुल्ल ने कहा—'भोजन तो इसे आप किसी भी दशा मे नही कह सकती, सुमित्राजी ! है तो यह चाय-पान ही ।'

'तो किसी दूसरे दिन हमारी आचार्याजी को भोजन का भी निमन्त्रण दे दिया जाए, दादा ?' कजला ने प्रश्नसूचक दृष्टि से प्रफुल्ल की ओर देखते हुए कहा।

'तुम्हारी आचार्याजी स्वीकार करे तब न ?' प्रफुल्ल ने सुमित्रा की ओर मुसकराते हुए देखकर कहा।

'जिसे आप चाय-पान अथवा जलपान कह रहे है,' सुमित्रा ने भी मुसकराहट के साथ कहा—'उसे ही मै भोजन समझ रही हूँ।'

'इसका अर्थ यही हुआ कि आप कजला का अनुरोध अस्वीकार कर रही हैं।' प्रफुल्ल ने कहा—'अच्छा, चाय-नाश्ता शुरू कीजिए, सुमित्राजी ! यह बात-चीत तो चलती ही रहेगी।'

सुमित्रा ने चाय-पान प्रारम्भ करते हुए कहा—'आप लोगो का निमत्रण जिस आत्मीयता से भरा हुआ मुझे मिला और मिल रहा है, उसे अस्वीकार करने की धृष्टता मै स्वप्न मे भी नही कर सकती। परन्तु इस प्रकार घने-घने आमत्रण-निमत्रण . ...।'

'दुनिया की नजरो मे उचित प्रतीत नही होते ! ' प्रफुल्ल ने सुमित्रा को बीच मे ही टोकते हुए कह दिया।

सिर हिलाकर सुमित्रा ने मानो कह दिया कि हॉ, यही बात है।

'परन्तु दुनिया की नजरो और आलोचनाओ का हमे वही तक ध्यान रखना चाहिए, सुमित्राजी, जहॉ तक हमारा अहित होने की सम्भावना न हो।' प्रफुल्ल का दार्शनिक मुखर हो उठा—'मै इस बात का कायल नही कि दुनिया की नजरो का खयाल रखकर हम स्वय अपना अहित कर बैठे। हो सकता है, आप यह तर्क करने लगे कि हम लोगो का आमत्रण-निमत्रण अस्वीकार कर देने से आपका आखिर क्या अहित हो सकता है ?'

'लेकिन मैने तो यह तर्क किया नही, घोष साहब।' सुमित्रा ने बीच मे ही प्रफुल्ल को टोकते हुए अपनी कैफियत देनी चाही।

'मैने भी यह नही कहा, सुमित्राजी, कि आप यह तर्क कर रही है। मेरे शब्दो पर तनिक ध्यान दीजिए। मैने तो सम्भावना ही दर्शाई है कि हो सकता है, आप ऐसा तर्क करने लगे। हॉ, तो मै कह रहा था कि आप सहर्ष हम लोगो का आमत्रण अस्वीकार कर सकती है, परन्तु दुनिया की नजरो के ख्याल से अथवा भय से ऐसा न कीजिए। यदि आपकी अन्तरात्मा ऐसा करना चाहे, तो आप नि सकोच ऐसा कर सकती है। मै आत्मा को ही सर्वोपरि समझता हूँ। आत्मा अक्षत है, सुमित्राजी ! आत्मा का अस्तित्त्व हमारा शरीरान्त हो जाने पर भी बना रहता

है। शैल का निधन हो जाने पर मैंने परलोकवाद का जो थोडा-बहुत अध्ययन किया है, उससे आत्मा के अक्षत रहने के सम्बन्ध मे मेरे विचार और भी दृढ हो गए है।'

'आत्मा!' सुमित्रा ने कुछ अवरुद्ध गले से कहा—'मै भी यही मानती हूँ कि आत्मा अक्षत है। और इसीलिए हमे दिवगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सन्तोष का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए, घोष साहब!'

सुमित्रा को अपने दिवगत पिता की अन्तिम और अधूरी इच्छा का सहसा ध्यान आ गया—'दुनिया मे जब तक तुझे दुनियादारी के सभी उपकरणो और सुखो के बीच मै न देख लूँगा, तब तक मेरी आत्मा को सन्तोष न मिल सकेगा।' और अपने पिता की इस अन्तिम इच्छा की पूर्त्ति करने के लिए ही सुमित्रा इस प्रफुल्ल घोष की ओर इतनी आकर्षित हो उठी है। उसके इस आकर्षण का रहस्य उसकी अपनी अन्तरात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नही समझ सकता। कोई समझ ही कैसे सकता है?

सुमित्रा की इस बात का रहस्य प्रफुल्ल नही समझ सका। उसने केवल यही समझा कि आत्मा के अक्षत रहने की जो बात उसने कही है, उसका समर्थन-मात्र कर रही है सुमित्रा। इसीलिए प्रफुल्ल ने कहा—'हॉ, सुमित्राजी, दिवगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सन्तोष का हमे पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।'

परन्तु यह क्या? प्रफुल्ल ने ऑख उठाकर सुमित्रा के मुख की ओर देखा, तो पाया कि उसकी बडी-बडी ऑखो की काली-काली पुतलियॉ अश्रु-मोतियो की माला पिरो रही है।

'क्या बात है, सुमित्राजी?' प्रफुल्ल ने आश्चर्य एव करुणा से भरकर कहा—'आपकी ऑखे सजल क्यो हो उठी?'

सुमित्रा ने रूमाल से अपनी गीली ऑखे पोछ ली, फिर कुछ प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा करते हुए कहा—'कुछ नही, घोष साहब! मानव के मानस मे कब कैसा ज्वारभाटा आ जाता है, इसे सदा शब्दो द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता।'

'यदि मेरे शब्दो से आपके अन्तस्तल पर कोई आघात पहुचा हो, तो मैं क्षमा ।'

'नही-नही!' सुमित्रा ने बीच मे ही प्रफुल्ल को टोक दिया—'आप मुझसे बारबार यह क्षमा-याचना न किया करे।' फिर एक क्षण रुककर उसने कजला और रेणुका की ओर देखा—गौर से देखा।

प्रफुल्ल शायद सुमित्रा का मनोभाव समझ गया, इसीलिए उसने कहा—'कजला, तुम रेणुका के साथ अब अपने कमरे मे जाओ। मैं अभी तुम्हारी आचार्याजी को लेकर वहाँ आऊँगा।'

'जी, अच्छा!' कहकर कजला खडी हो गई और रेणुका के साथ उस कमरे से बाहर चली गई।

—१३—

'यह आपने ठीक नही किया।' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की ओर गभीर मुद्रा से देखते हुए कहा।

'क्या, सुमित्राजी?' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए पूछा।

'कजला और रेणुका को यहाँ से चले जाने का आदेश देने की भला क्या आवश्यकता थी?'

'यह आप स्वय अपनी आत्मा से पूछ देखिए।' प्रफुल्ल ने एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

'तो यह कहिए कि परलोकवाद का अध्ययन करके आप दूसरो के मन की बात भी समझने लगे है?'

'कुछ-कुछ।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'अच्छा, सुमित्राजी; जब आप मुझे क्षमा-याचना करने का निषेध कर चुकी है, तब मै आपसे खुलकर दो-एक बाते पूछना चाहता हूँ।'

'सहर्ष पूछिए।'

'मै जानना चाहता हूँ कि आपके मानस मे अभी चन्द मिनटों पहले कौन-सा ज्वारभाटा आया था?'

'क्या करेगे यह सब जानकर?'

'कुछ कर सकूँगा या नही, यह निश्चय तो तभी किया जा सकेगा न, जब मै आपकी बात सुन-समझ लूँगा।'

'मेरी कहानी तो शायद आप पहले ही सुन चुके होगे!' सुमित्रा ने गम्भीर होते हुए कहा—'नागरजी ने मेरे सबध मे आपको कुछ-न-कुछ अवश्य बतलाया होगा? मेरा अब तक का जीवन एक ज्वारभाटा ही समझिए।'

'हाँ, यह मुझे मालूम हो चुका है कि आप सुशिक्षित कुमारी है और दुर्दिन की मारी है।' प्रफुल्ल ने सिगरेट का कश खीचते हुए कहा।

'दुर्दिन!' सुमित्रा ने एक ठण्ढी साँस छोडते हुए कहा—'देश का विभाजन यदि न होता, तो मुझे इस दुर्दिन का शिकार ही क्यो होना पडता? मुझे ही क्यो, लाखो-करोडो नर-नारियो को सदियो से बसे हुए अपने पैतृक घरद्वार, हरे-भरे खेत-खलिहान और उद्योग-धन्धे छोटकर शरणार्थी बन जाना पडा—अपने ही देश मे परदेसी बन जाना पडा। अपने देश मे अपना राज हो गया है न—अपना शासन!'

'शासन-चक्र चलाना कौतुक नही है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने सुमित्रा के विद्रूप का उत्तर देते हुए कहा—'शासक को कभी-कभी बडे निर्दय निर्णय करने पडते है। आप जानती होगी, लोकरजन के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम राम को प्राण नही, प्राणाधिका सीता का परित्याग करना पडा था, अर्जुन को अपने ही भाई-बन्धुओ की छाती को कराल बाणो की विषाक्त नोको से छेदने पर विवश होना पडा था। इसी तरह भारत के शासको को भी विवश होकर जन-सख्या का यह विनिमय करना पडा।'

'लेकिन शासक को जब हम कर्त्तव्य-पालन मे शिथिल देखते है, और अकर्मण्यता के शून्य मे कल्पना की कलम से आदर्शो के रगीन चित्र आँकने मे तल्लीन पाते है, तब हमे यह कहना ही पडता है कि व्यावहारिक तथ्यो का कठोर क्रम रोकने मे वह कदापि समर्थ नही हो सकता। जन-सख्या का विनिमय करने मे कोई बुराई नही थी, परन्तु मै पूछती हूँ कि इस विनियम के सिलसिले मे शासक का कर्त्तव्य और उसकी शक्तियाँ क्या सो रही थी? पाकिस्तान की छाया मे करोडो हिन्दू नर-नारियो पर रात-दिन जो पशाचिक प्रहार होते रहे, उनके प्रतिकार मे हमारे शासको ने क्या किया? हमारी बहू-बेटियो और माताओ के सम्मान

पर होनेवाली क्रूर चोटो को आखिर निर्जीव कायर की भाति हमारे शासक क्यो सहन करते रहे ? अपनी दमयन्ती, द्रौपदी, सीता और सावित्री-जैसी ललनाओ के यज्ञ-वह्नि और वेद-ऋचा की भाति पवित्र सतीत्त्व पर जो प्रहार हुए, उनसे हमारे शासको का हृदय क्यो न खौल उठा ? क्या हमारे शासक यह भूल चुके है कि हमने एक नारी की सम्मान-रक्षा मे अक्षौहिणी सेनाओ को महाभारत की लपकती ज्वालाओ मे झोक दिया था ?'

सुमित्रा के गौरवर्ण मुख पर, बिजली के पखे की हवा के बीच भी स्वेद-कण झलक उठे। रूमाल से अपना मुख पोछते हुए सुमित्रा ने फिर कहा—'ये सब बाते ऐसी है, घोष साहब, जिनकी याद आते ही मेरा खून खौल उठता है। और इसी महानाश के सिलसिले मे—जनसख्या के विनिमय मे—मुझे अपने पिता को भी सदा के लिए खो देना पडा। उनकी सारी इच्छाएँ, उनके सारे अरमान उन्ही के साथ समाप्त हो गए।' सुमित्रा सहसा मौन हो गई। उसकी गम्भीर मुद्रा पर स्पष्ट रूप से किसी गहन विषाद की रेखाएँ उभर आई थी।

'शासन और राजनीति तो शतरज की चाल है, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने कहा—'हमारे शासक अब दूसरे—पराए—नही है, बेगाने नही है। अपने देश मे अपना राज है। जन-जन का हित-साधन करनेवाला और जनतन्त्र का कट्टर समर्थन करनेवाला व्यक्तित्त्व हमारे देश का प्रधान मन्त्री है। जवाहरलालजी नेहरू जो कुछ कर रहे है, उस पर सन्देह करने की कोई गुजाइश नही है। यह बात दूसरी है, कि परिस्थितियो के घटाटोप मे हम उनकी यथार्थता को समझ न सके—ठीक उसी तरह जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने जब सीता का परित्याग किया था, तब दूसरे लोगो की बात दूर, स्वय उनके भाई लक्ष्मण भी राम का उद्देश्य भली-भाति नही समझ सके थे। इसीलिए मै कह रहा हू कि राज-नीति की गुत्थियाँ सुलझाना सर्वसाधारण का काम नही।'

'तो आप जवाहरलालजी के इन शब्दो का समर्थन कर रहे है कि कठोर अवसर पर वाणी को अधिक-से-अधिक सयत होना चाहिए ?' सुमित्रा ने प्रफुल्ल के अन्तस्तल की गहराई को माप लेने का प्रयत्न करना चाहा।

'भारतीय सस्कृति तो हमे यही सिखलाती है, सुमित्राजी !'

'परन्तु सयत वाणी की पृष्ठभूमि पर रहनेवाला प्रभाव जब तक कार्यों की तेजस्विनी शृङ्खला के माध्यम से प्रकट न हो, तब तक उसका महत्त्व ही क्या हो सकता है?' सुमित्रा ने एक क्षण रुककर कहा—'कॉटे को फूल की नोक से कभी नही निकाला जा सकता। मेरा अपना विश्वास है कि हमारे प्रधान मन्त्री के सौजन्य और सदाशय से ओतप्रोत शब्दो को पाकिस्तान कभी न समझ सकेगा। पूर्वी बगाल और पजाब के अगणित मुस्लिम लुटेरो की रक्त-लोलुप रसना को हिन्दू जन-धन और नारी की सस्ती लूट के रक्त का जो स्वाद मिल चुका है, वह पाकिस्तान को भेजे जानेवाले कडे विरोधी पत्रो के अक्षरो से मिट न सकेगा। जगली भेडिए को वाद्य-यन्त्रो की सुरीली स्वर- लहरियो से निरामिष-भोजी नही बनाया जा सकता।' कहते-कहते सुमित्रा का चेहरा तमतमा उठा।

'आपका तर्क ठीक हो सकता है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने अपना अधजला सिगरेट 'ऐश-ट्रे' मे फेकते हुए कहा—'परन्तु राजनीति के दॉव-पेचो मे यह तर्क कहॉ किस प्रकार लागू हो सकता या नही, इसे हम नही समझ सकते। हॉ, आप चाहे तो दिल्ली चलकर कभी प्रधान मत्री नेहरूजी से स्वय यह तर्क कर देखे। मै आपके साथ दिल्ली चल सकता हूँ और नेहरूजी से आपकी भेट करा सकता हूँ। वही इसका यथोचित उत्तर दे सकते है—ठीक उसी तरह, जिस प्रकार सीता के परित्याग का कारण स्वय रामचन्द्र ने ही अपने भाई लक्ष्मण तथा अन्य परिजनो को समझाया था।'

'मै किसी से कोई तर्क करके अपने हृदय के घावो पर नमक छिडकवाने की गलती नही करना चाहती।' सुमित्रा ने उदासीनता के स्वर मे कहा—'मै जब अपना घर-द्वार ही नही, बल्कि अपने पिता को भी खो चुकी, तब किसी से तर्क करके अब क्या प्राप्त कर लूँगी?'

'आप चाहे तो बहुत-कुछ प्राप्त कर सकती है।'

'आपका मतलब मै नही समझी!'

'ओह!' प्रफुल्ल ने कुछ सतर्कता से काम लेते हुए कहा—'आप मेरा आशय नही समझ सकी, इसका अर्थ यही हुआ न, कि मै शायद कोई अप्रिय बात कह बैठा हूँ?'

'नही, आपके शब्दो मे कोई अप्रिय बात नही है।' सुमित्रा ने अपनी बात स्पष्ट करते हुए कहा—'हाँ, उसमे कुछ अस्पष्टता अवश्य है। 'बहुत कुछ' से मै आपका आशय एकदम नही समझ सकी।'

'बहुत-कुछ से मेरा आशय यही था कि आपको वीतराग बनने की आवश्यकता नही है। जीवन-सग्राम के घात-प्रतिघातो से विचलित हो जाना अपने अस्तित्व को मिटा देना है, सुमित्राजी! जो हो चुका, उसे धीरे-धीरे भूलने की चेष्टा करना ही बुद्धिमानी है और है सुखी जीवन का रहस्य समझ लेने की दिशा मे प्रवृत्त होना।'

'मेरे लिए अब भी आपकी बात अस्पष्ट है, घोष साहब!'

'तो मै और साफ किए देता हूँ।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'आपकी बातो से मै यही समझ सका हूँ कि आप अपने पिताजी को खोकर स्वय को अकिंचन अनुभव कर रही है। परन्तु इस भावना को धीरे-धीरे भूलने की चेष्टा आपको करनी होगी।'

'यह कैसे हो सकता है, घोष साहब?'

'हो सकता है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने गभीर होकर कहा—'यदि मैं गलत नही समझ सका हूँ, तो कह सकता हूँ कि दिवगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सतोष की बात छिडते ही आप बहुत गम्भीर हो उठी थी—कदाचित् अपने पिता की स्मृति से आप भर उठी थी। इसका अर्थ मै यही समझ सका हूँ कि आपके पिता की कोई अन्तिम इच्छा अधूरी रह गई है।'

सुमित्रा ने आश्चर्य से भरकर आँखे फैलाते हुए प्रफुल्ल की ओर देखा। उसे इस तरुण की असाधारण बुद्धि पर ईर्ष्या हो उठी। आखिर यह कैसे समझ गया कि सुमित्रा सचमुच अपने पिता की अन्तिम इच्छा को लेकर आजकल इतनी अभिभूत हो रही है—परेशान हो रही है। तो क्या प्रफुल्ल

यह भी समझ गया होगा कि सुमित्रा अपने पिता की अन्तिम इच्छा को पूरा करने के लिए ही प्रफुल्ल की ओर ? नही-नही, यह नही हो सकता, यह असम्भव है। पिता को अन्तिम इच्छा अधूरी रह जाने का आभास पा जाना तो सम्भाषण के सिलसिले मे ही सम्भव हो सका है। परन्तु मेरे मन के अन्तराल का गोपनीय निश्चय समझ सकना आसान नही।

सुमित्रा को इस प्रकार मौन - मूक देख, प्रफुल्ल ने कहा—'क्या मै जान सकता हूँ, सुमित्राजी, आपके पिताजी की अन्तिम इच्छा क्या थी?'

इधर सुमित्रा कल से लेकर अब तक जिस बात से परेशान थी, वही सामने आ गई। सुमित्रा के मन मे आया कि वह इस स्वर्ण अवसर को हाथ से न जाने दे और अपने पिता की अन्तिम इच्छा को स्पष्ट शब्दो मे प्रफुल्ल के सामने रख दे। परन्तु सुमित्रा के अन्तर की नारी गहरे सकोच से भर उठी। नारी की जन्मजात लज्जा एक पुरुष के समक्ष निरावरण होने का दुस्साहस कैसे कर सकती थी? उसने चतुराई से काम लेते हुए कहा—'ये सब व्यक्तिगत बाते है, घोष साहब। इनकी गहराई मे जाना . .।'

'सबके लिए उचित नही।' प्रफुल्ल ने अधीरता के साथ सुमित्रा की बात पूरी होने के पहले ही कह दिया—'सबको इसका अधिकार भी नही शायद। यही आप कहना चाहती है न, सुमित्राजी?'

'नही, मेरा यह मतलब नही।'

'तब?'

'पूरी बात सुने बिना ही आप मुझे गलत समझने की चेष्टा न किया करे, तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।' सुमित्रा ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा—'मै यह कह रही थी कि व्यक्तिगत बातो की गहराई मे जाना अपने-आपको व्यर्थ परेशान करना है।'

'तो यह कहिए कि आप मुझे परेशान नही करना चाहती?'

'कभी नही।'

'अर्थात् आप अपने सुख-दुख से मुझे दूर रखना चाहती है?'

'यह भी नही।'

'तब यह कहिए कि आप जिस रोग से पीडित है, जिस चिन्ता से अभिभूत है, उसका कोई उपचार भी नहीं करना चाहती?'

'ऊँहुँ!' सुमित्रा ने सिर हिलाते और मुसकराते हुए कह दिया।

'यह भी नही,वह भी नही, तब आखिर बात क्या है?' प्रफुल्ल ने कुछ खीझ दिखलाते हुए कहा—'सुना था कि नारी एक पहेली होती है। पुरुष उसकी गहराई तक कभी पहुँच नही सकता। परन्तु इस तथ्य को कभी प्रत्यक्ष नही देखा था। आज यह भी देख लिया।'

सुमित्रा अपनी इस अप्रत्याशित विजय पर गर्व का अनुभव करने लगी। उस पुरुष को, जिसे सुमित्रा मन-ही-मन अपनी आराधना के आसन पर आसीन करने का निश्चय कर चुकी है, इस प्रकार वाग्जाल मे फँसते देख,सुमित्रा एक अव्यक्त प्रसन्नता से भर उठी। उसे लगा कि जब प्रफुल्ल इतनी आत्मीयता से उसके सुख-दुख की बात पूछ रहा है, तब उससे कोई दुराव रखना उचित न होगा। तो क्या वह अपने पिता की अन्तिम इच्छा प्रफुल्ल को बतला दे? आखिर हानि क्या है बतला देने मे? उसने निश्चय कर लिया कि यह बात वह बतला अवश्य देगी, किन्तु अभी नही। क्यो न वह प्रफुल्ल घोष को स्वय अपने निवास-स्थान पर चाय पीने के लिए आमन्त्रित करे और वही यह बात बतलाई जाए? तभी सुमित्रा ने कहा—'आप मुझे फिर गलत समझ रहे है, घोष साहब! नारी गम्भीर होती होगी; परन्तु यह सुमित्रा अभी पूरी नारी नही है—अधूरी नारी है। इस दशा मे नारी की गहराई मुझमे कहाँ हो सकती है?'

'अधूरी नारी!' प्रफुल्ल ने कहा—'ओह! आपका आशय यह है कि जब तक आप कुमारी है, तब तक आपको नारी नही कहा जा सकता?

सुमित्रा कुछ न बोलते हुए भी सिर हिलाकर मानो कह बैठी कि हाँ, यही बात है।

'लेकिन यह तो आपके हाथ की बात है।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा— 'आप जब चाहे, पूरी नारी हो सकती है।'

सुमित्रा के गालो पर जो स्वाभाविक लाली दमक रही थी, वह कई गुनी होकर बहुत गहरी हो उठी। उसने गुरु गम्भीर स्वर मे कहा—'जिस परिणय को आप इतना सरल समझते है—आप ही नही, आम तौर पर सारा पुरुष-वर्ग एक खेल समझता है, वह नारी के लिए खेल नही, बल्कि जीवन-मरण का सौदा होता है।'

'मै इसे कब अस्वीकार करता हूँ, सुमित्राजी ?'

'तब आप कैसे कह रहे है कि मै जब चाहूँ, पूरी नारी हो सकती हू ?'

'इसलिए कि आप साधारण नारी से कही बहुत ऊचे स्तर पर है। आप एक महिला-विद्यालय की आचार्या है। दुनिया के अनेक सघर्षो का सामना आप कर चुकी है। इस दशा मे या तो किसी पुरुष को आप अपना जीवन-साथी बनाने का निश्चय कर ही चुकी होगी या अब कर सकती है।'

सुमित्रा को एक बार फिर लगा कि प्रफुल्ल सभवत उसके आकर्षण को बहुत कुछ भाँप चुका है। यदि यह बात न होती, तो साधारण सम्भाषण के सिल-सिले मे न तो इतनी आत्मीयता ही यह प्रकट कर सकता, न मेरे पिता की अन्तिम इच्छा जानने का गहरा आग्रह कर सकता और न इस प्रकार अन्त मे परिणय की बात उठा सकता। सुमित्रा को बडा मायावी प्रतीत हुआ यह प्रफुल्ल।

सुमित्रा के इस मौन को भग करने की चेष्टा करते हुए प्रफुल्ल ने कहा— 'अच्छा, सुमित्राजी, इस प्रसग को बदल देना ही शायद अब ठीक होगा। आप तो खुलकर बात भी नही कर रही है।'

'हॉ, मै भी यही चाहती हू।' सुमित्रा ने कुर्सी से खडे होते हुए कहा—'एक अनुरोध मुझे भी आपसे करना है। शनिवार को रात मे आठ बजे आप मेरे निवासस्थान पर आकर चाय पीने की कृपा कीजिए।'

'एक शर्त्त पर आ सकूँगा।'

'वह क्या ?' सुमित्रा ने अधीर उत्सुकता से पूछा।

'यदि आप अपने पिताजी की अन्तिम इच्छा मुझे बता सके।'

'बतला दूँगी।' सुमित्रा ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—'तो मै आपकी राह देखूँगी। भूल तो नही जाएँगे ?'

'नही भूलूँगा। अवश्य आऊँगा।'

'अग्रिम धन्यवाद।' सुमित्रा ने मुसकराते हुए कहा—'अच्छा, कजला और रेणुका का कमरा कहॉ है ? आपने कहा था न , मुझे लेकर आप उनके कमरे मे पहुँचेगे।'

'अरे ! मै तो यह बात एकदम भूल गया था।' प्रफुल्ल ने आगे-आगे पग बढाते हुए कहा—'अवश्य चलिए ।'

कजला और रेणुका के कमरे मे पहुँचकर सुमित्रा उनसे बाते करने लगी, तो प्रफुल्ल ने कहा—'मै अभी आता हू, सुमित्राजी। ड्राईवर से तैयार रहने को कह दूँ।'

'हॉ, मै अभी पॉच-सात मिनट यहॉ बैठूँगी।'

प्रफुल्ल ने जाकर ड्राईवर को आदेश दिया कि आचार्या सुमित्राजी को गान्धी महिला - विद्यालय के छात्रावास मे उनके निवासस्थान पर वह छोड आवे।

ड्राईवर तत्काल मोटरखाने से कार लेने चला गया। जब तक ड्राईवर कार लाया, सुमित्रा भी कजला और रेणुका के कमरे से बाहरी बरामदे मे आ चुकी थी। उसने कार तैयार देख, प्रफुल्ल को दोनो हाथ जोड, अभिवादन करते

हुए कहा—'अब आज्ञा दीजिए।'

'आज्ञा न दूँ, तो क्या आप रुक सकेगी ?'

'शायद रुकना पडे !' मुसकराते हुए सुमित्रा ने कहा।

'नही, दुनिया की नजरो का और व्यावहारिकता का खयाल हमे रखना ही होगा।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'कजला और रेणुका को भेजूँ आपके साथ ?'

'नही, अब रात मे इन्हे भेजने की आवश्यकता नही।' सुमित्रा ने कहा—'कार किसी बेगाने की तो है नही।' और पुन अभिवादन कर सुमित्रा कार मे बैठकर चली गई।

प्रफुल्ल कई क्षणो तक उसी दिशा की ओर देखता रहा, जिस दिशा मे सुमित्रा को लेकर कार चली गई थी। राजपथ लगभग सुनसान था। रात्रि का अन्धकार धीरे-धीरे सघन होने लगा था। शुभ्र नीलाकाश मे अगणित तारे टिमटिमा रहे थे। इन टिमटिमाते तारो को प्रफुल्ल बहुत देर तक देखता रहा और रहस्यमयी सुमित्रा के सम्बन्ध मे जाने क्या-क्या सोचता रहा, जो अपने-आपको अधूरी नारी समझती है, परन्तु बौद्धिक प्रतिभा जिसके रोम-रोम मे व्याप्त है, और न केवल व्यावहारिकता, प्रत्युत राजनीति मे भी जिसकी गहरी पहुँच है।

वह सोचता रहा और देखता रहा नीलाकाश के टिमटिमाते तारो को। परन्तु उसकी समझ मे न आ सका कि यह सुमित्रा आखिर अपने आपको अधूरी नारी क्यो समझती है। यदि परिणय हो जाने से ही कोई नारी अपने-आपमे पूर्णता का अनुभव करने लगती है और सुमित्रा भी यही चाहती है, तो फिर परिणय का प्रसग छिडते ही वह मौन क्यो हो गई थी ? कैसी रहस्यमयी है यह सुमित्रा—अधूरी नारी ?

प्रफुल्ल का दिमाग भन्ना उठा। उसने अपने सिर को एक हलका-सा झटका दिया और प्रकृतिस्थ होने का प्रयत्न करते हुए अपनी बैठक की तरफ चला गया।

समय सरक जाता है, किन्तु उसकी मीठी-कडवी स्मृतियाँ मानव-मस्तिष्क मे कभी-कभी अनायास ही किसी कुहासे की भाँति छा जाती है। स्मृतियो का यह कुहासा बहुधा कष्टप्रद ही होता है। इसका एक कारण है. मीठी स्मृतियो की अपेक्षा कडवी स्मृतियाँ ही आम तौर पर कुहासे की तरह मानव-मस्तिष्क मे धुएँ की भाँति उमडती-घुमडती रहती है। इस कष्ट से मुक्ति पाने का उपाय भी मानव अपनी कल्पना और बुद्धि के सहारे खोजने लगता है। परन्तु जिस उपाय का वह सहारा लेता है, वह सदा कल्याणकारी ही होता हो, यह जोर देकर नही कहा जा सकता।

पण्डित देवदत्त शर्मा भी अपने पुत्र हरीश की दिनोदिन बढती उद्दण्डता और उच्छृङ्खलता से अभिभूत रहने लगे। जिस हरीश की सुख-सुविधा के लिए उन्होने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, जिसकी उच्च-शिक्षा के लिए उन्होने अपना खून सुखा डाला, उसकी ओर से प्रदर्शित तनिक-सी उपेक्षा भी उन्हे सर्पदश की भाँति प्राणान्तक पीडा पहुँचाने लगी।

उस दिन जब रेडियो पर फिल्मी गीतो का कार्यक्रम, वह अपने पिता देवदत्त की कराहना की तनिक भी परवाह न कर बराबर सुनता रहा और स्वय देवदत्त को बाजार जाकर अपनी दवा लानी पडी, तब से एक मर्मान्तक पीडा रह-रहकर देवदत्त को बेचैन करने लगी है। उस दिन उन्होने स्पष्टत समझ लिया कि जिस पुत्र को वह अपनी समस्त आशाओ का केन्द्र समझ रहे है, वह उनके जीवन का बहुत बडा धोखा और मृगजल है।

हरीश की इस उद्दण्डता का आखिर कारण क्या है ? माता-पिता के प्रति उसकी इस रुक्षता और अकर्त्तव्यपरायणता का मूल कारण क्या है ? बहुत सोचते-विचारने पर भी जब देवदत्त की समझ मे कोई कारण नही आया, तब उन्होने सोचा, हरीश अब सयाना हो रहा है, वयस्क हो रहा है। बीस वर्ष के तरुण पुत्र को सम्भवत अब किसी जीवन-सगिनी की आवश्यकता अनिवार्य हो उठी है। तरुणाई का ज्वार प्रत्येक युवक मे उठता है। प्रकृति का यह अटल विधान अनादिकाल से अपना प्रबल अस्तित्त्व रखता है और सदा इसका अस्तित्त्व रहेगा। बहुत सम्भव है, एक सुन्दर जीवन-सगिनी की छाया मे हरीश की यह उद्दण्डता, उच्छृङ्खलता और अकर्त्तव्यपरायणता तिरोहित होने लगे।

देवदत्त जब अपने अन्तर के हाहाकार को दबाने के लिए हरीश के विवाह की बात सोच रहे थे, तभी काशी के एक अध्यापक अपनी सुन्दर और सस्कृत पढी-लिखी कन्या का विवाह-प्रस्ताव लेकर देवदत्तजी के पास पहुँचे। ०न अध्यापक को देवदत्तजी बहुत समय से जानते थे। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही थी , किन्तु कुलीनता मे कोई सन्देह करने की गुजाइश नही थी। फिर देवदत्तजी आदर्शवादी है—सुधारवादी भी । कन्या के विवाह मे आर्थिक लेन-देन और दहेज-प्रथा की उन्होने अपने उपन्यासो और कहानियो मे खुलकर भर्त्सना की है। इस दशा मे आर्थिक प्रश्न उनके सामने कोई बाधा उन्पन्न नही कर सका।

देवदत्त ने केवल एक शर्त्त रक्खी कि हरीश स्वय उन अध्यापक की कन्या को देखेगा। आधुनिक युवको की यह पहली माँग रहती है, जिसकी उपेक्षा वह नही करना चाहते। हरीश को यदि कन्या सुन्दर और अनुरूप प्रतीत हुई, तो देवदत्त यह विवाह-प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लेगे।

हरीश ने स्वय काशी जाकर अपने माता-पिता के साथ प्रस्तावित कन्या को देखा और वह मुग्ध हो गया। देवदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक यह विवाह-प्रस्ताव

स्वीकार कर लिया। ज्येष्ठ पुत्र का विवाह था, अत बडे उत्साह से उन्होने इसे सम्पन्न किया। उनका उत्साह और खर्च देखकर सभी परिचितो ने कहा कि देवदत्तजी ने अपनी हैसियत से बहुत अधिक खर्च किया है। और, यह अतिशयोक्ति नही थी। देवदत्त ने अपने जीवन की न केवल सारी गाढी कमाई इस विवाह मे लगा दी, बल्कि एक बडी रकम भी कर्ज मे लेकर उडा दी।

जिस दिन पुत्रबधू के साथ देवदत्त ने अपने घर मे प्रवेश किया, उनकी उमगो का उत्स उछल पडा। उन्हे लगा कि अब उनका घर गुलजार हो गया। देवदत्त की पत्नी की प्रसन्नता का ज्वार मानो समस्त सुखो की पूर्णिमा के चन्द्रमा का स्पर्श कर बैठा। पुत्रबधू के गृह-प्रवेश के उपलक्ष्य मे ऐसा शानदार प्रीतिभोज उन्होने दिया कि नगर मे उनकी प्रशसा की धूम मच गई।

परन्तु अमित सुख का स्पर्श भी मानव को अधिक समय तक सुखी नही रहने देता। इस क्षणभगुर ससार मे प्रत्येक वस्तु का अन्त अवश्यम्भावी है। इस दशा मे मानव का सुख स्थिर कैसे रह सकता है? पुत्र के विवाह के आठ महीने के बाद ही देवदत्त के इस अमित सुख के चन्द्रमा पर खग्रास ग्रहण की काली छाया पडने लगी। देवदत्त की पत्नी पीलिया से पीडित हुई और हरीश की पत्नी भी ज्वर का शिकार हो गई। यो तो देवदत्त की पुत्रबधू ने जिस दिन से इस घर मे पैर रक्खा, उसी दिन से बीमारियो और आर्थिक सकट का भयङ्कर ताण्डव प्रारम्भ हो चुका था; किन्तु अब यह ताण्डव अपने चरम बिन्दु पर पहुँच रहा था।

विवाह के बाद ही पुत्रबधू की हथेलियो मे भयकर अपरस हुआ। शहर के एक प्रख्यात डाक्टर का उपचार कराया गया। सीमा से बाहर खर्च किया गया, फिर भी कोई लाभ न हुआ। देवदत्त अब तक पुत्र के विवाह का कर्ज भी पूरा न चुका सके थे कि डाक्टरो की जेबे भरने का क्रम जारी हो गया। स्वभावत उनकी खीभ और झुँझलाहट बढने लगी।

एक दिन उनके एक मित्र, जो स्वय होमियोपैथिक डाक्टर थे, उनकी

आपबीती सुनकर कह उठे—'आप व्यर्थ ही डाक्टरो के चक्र मे पड जाते है। मुझसे कहा होता, तो आसानी से आपकी पुत्रबधू का अपरस ठीक हो जाता। अब भी कुछ नही बिगडा है। आप मुझे दवा करने दीजिए।'

मित्र की आत्मीयता से प्रभावित होकर तथा अपनी आर्थिक स्थिति की दयनीयता से विवश होकर देवदत्त ने होमियोपैथिक उपचार प्रारम्भ कर दिया। परन्तु उनकी गृहदशा पर इस समय मानो राहु-केतु की छाया पड रही थी। उनके पुत्र हरीश को इस होमियोपैथिक उपचार कराने मे पिता के पक्षपात की झलक दीख पडी। उसके मन मे किसी अज्ञात असन्तोष की जो चिनगारी चमक रही थी, वह अपने विस्फोट का मानो अवसर देख रही थी। यह विस्फोट उस समय हुआ, जब हरीश की माँ पीलिया से पीडित हुई और डाक्टर को घर मे बुलाकर प्रतिदिन उन्हे तीन-तीन इजे-क्शन दिलाने पडे।

होनहार बडी प्रबल होती है। जिस समय हरीश की माँ पीलिया से पीडित हुई, ठीक उसी समय हरीश की पत्नी को भी बुखार आने लगा। हरीश स्वय अपनी पत्नी को लेकर एक प्रख्यात डाक्टर के पास गया। उसने पाँच-पाँच रुपए मूल्य के कुछ इजेक्शन प्रतिदिन दिए जाने का परामर्श दिया।

देवदत्त यह स्थिति देख, विक्षुब्ध हो उठे। सीमित-सी आय के एक हिन्दी पत्रकार की आँखो के आगे तितलियाँ नाच उठी। पत्नी के पीलिया का उपचार यदि नही कराया गया, तो अपनी गृहस्थी का सर्वनाश उन्हे साफ दीख रहा था। इधर हरीश की यह हरकत कि साधारण-से बुखार मे भी वह पाँच रुपए दिन के इजेक्शन अपनी पत्नी को दिलाना चाहता है। विषम समस्या थी उनके सामने।

देवदत्त ने स्पष्ट रूप से इतना महँगा उपचार कराने मे अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। बस, देवदत्त की इस असमर्थता ने हरीश के असन्तोष की चिनगारी को प्रज्वलित करने मे आहुति का काम कर दिया। उसने अपनी

माँ की बीमारी मे ही देवदत्त से साफ कह डाला—'मैं साफ देख रहा हूँ कि मेरे साथ घोर पक्षपात बरता जा रहा है। मेरी पत्नी के अपरस का एलोपैथिक उपचार बन्दकर होमियोपैथिक उपचार कराया गया। अब मेरी पत्नी को इजेक्शन दिलाने मे भी असमर्थता प्रकट की जा रही है। लेकिन माँ की बीमारी मे डाक्टर को तीन-तीन बार घर बुलाया जा रहा है। माँ की बीमारी मे जितना खर्च किया जा रहा है, उसका तृतीयाश भी मेरी पत्नी पर नही किया गया।'

इस विस्फोट से देवदत्त का रोम-रोम जल उठा। मर्मान्तिक पीडा से व्यथित हो, वह अपना माथा पीटकर रह गए। अपने पुत्र का यह पराया-पन देख, देवदत्त की पत्नी मर्माहत हो उठी। पास-पडोसवाले कलियुगी पुत्र हरीश की इस अभिव्यक्ति पर थू-थू कर उठे। इन सबके इस प्रकार मर्माहत हो उठने का कारण था। देवदत्त ने कभी स्वप्न मे भी अपनी पुत्रबधू के इलाज मे किसी पक्षपात से काम नही लिया। पहले-पहल उन्होने अपरस का एलो-पैथी इलाज ही कराया था, परन्तु अपरिमित व्यय करने पर भी जब सन्तोषजनक लाभ न हुआ, तो विवश हो उन्हे वह इलाज बदल देना पडा। और, जिस होमियोपैथिक इलाज को यह हरीश पक्षपात कह बैठा, उसी इलाज से अन्त मे अपरस ठीक भी हुआ। अब जो बुखार पुत्रबधू को आ रहा है, वह केवल तीन दिन का साधारण-सा बुखार है। तत्काल इतने महँगे इजे-क्शन दिलाने की तनिक भी आवश्यकता नही है। यह तो हरीश की हठ-धर्मी है, नई बहू के चोचले है और है अपने ऋणग्रस्त और जर्जर पिता की परेशानियो मे वृद्धि करने की हरकत।

देवदत्त स्वभावत' क्रोधी है। उनका क्रोध जब भभक उठता है, तब दुर्वासा ऋषि का मूर्त्त रूप सामने आ जाता है। हरीश की इस सकुचित अभिव्यक्ति मे उन्होने भयकर घृणा, अपमान, कृतघ्नता, दुराव, लाछना, कर्त्तव्यहीनता आदि की ज्वालाएँ देखी और वह झुलस उठे। उन्होने साफ कह दिया—'आज जब तेरे विवाह के कर्ज से भी मैं मुक्त नही हो सका

और तेरी रुग्णा पत्नी का इलाज कराते-कराते मेरा कचूमर निकला जा रहा है, तब तेरी यह घृणित भावना मै सहन नही कर सकता। तुझे शर्म नही आती यह लाछन लगाने मे कि तेरी पत्नी के उपचार मे मै पक्षपात कर रहा हूँ, और तेरी माँ के इलाज मे जितना खर्च मै कर रहा हूँ, उसका तृतीयाश भी तेरी पत्नी पर नही हुआ? आज जब तू एक पाई की कमाई नही कर रहा है, तब तेरी यह हरकत और हिमाकत है। जब तू सचमुच कुछ अर्थोपार्जन करने लगेगा, तब भगवान् ही जाने, तू हम लोगो के साथ क्या नीचता करेगा। अब केवल एक रास्ता है: तू अपनी पत्नी के साथ हम लोगो से अलग होकर जहाँ चाहे, वहाँ रह।'

हरीश की बी० ए० फाइनल की परीक्षाएँ समाप्त हो चुकी थी। बी० ए० मे उसके ससम्मान उत्तीर्ण होने मे किसी सन्देह की गुजाइश नही थी। उधर उसके सास-ससुर ने इस बीच हरीश को उलटा-सीधा भरने मे कोई कमी नही रक्खी थी। इन परिस्थितियो मे देवदत्त का क्रोध हरीश-जैसे कृतघ्न और कर्त्तव्यच्युत कलियुगी पुत्र को सन्मार्ग पर न लाकर भ्रान्त कर बैठा। हरीश खुलकर अपने पिता से लडा-झगडा और बीमार माँ की तनिक भी चिन्ता न कर अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ एक दिन ससुराल चला गया।

हरीश के सास-ससुर का मन फूल उठा। किन्तु हरीश के माता-पिता का हृदय टूट गया। हरीश के सास-ससुर के प्रति देवदत्त का क्षोभ बढ गया। मन मे आया कि काशी जाकर उन्हे कसकर फटकार सुनाई जाए और यह कहा जाए कि तुम्हारे सस्कार इतने निम्न स्तर पर थे, यह हमे ज्ञात होता, तो कभी तुम्हारे यहाँ अपने लडके का विवाह न करता। अरे, इस समय तो तुम्हारी कुलीनता इसमे थी कि तुम इस बागी और पितृद्रोही हरीश को समझा-बुझाकर हमारे घर लाकर छोड जाते, किन्तु तुमने उसे आश्रय देकर और उसकी पीठ थपथपाकर हमारे साथ जो छल किया है, जो विश्वासघात किया है, उसका दण्ड भी ईश्वर तुम्हे देगा। ईश्वर के

दरबार मे कभी अन्याय नही होता। वहाँ देर हो सकती है; परन्तु अन्धेर नही हो सकता।

लेकिन देवदत्त ने हरीश के सास-ससुर के यहाँ जाने का विचार त्याग दिया। अपना दाम खोटा, तो परखैया को क्या दोष? यदि हरीश कुपुत्र न होता, तो एक सास-ससुर क्या, हजार सास-ससुर भी उसे मातृ-पितृद्रोही बनाने का दुस्साहस न कर सकते।

माता-पिता कितनी मनौतियाँ मनाकर, कितने कष्ट सहकर पुत्र का पालन-पोषण करते है और अपना पेट काट-काटकर उसे शिक्षा दिलाते है, यह सब हरीश भूल गया। पिता के क्रोध का कारण क्या है, इसे लाख समझाने पर भी उसने समझने की चेष्टा नही की। माता-पिता की माया-ममता, उनकी मर्यादा, उनके प्रति कर्त्तव्यपरायणता आदि को हरीश ने क्षण भर मे चकनाचूर कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है, कि वह ऐसे किसी अवसर की खोज मे ही था। इसीलिए आज उसने पिता के मुख से चले जाने की बात पकड ली और सपत्नीक उनके घर से बाहर हो गया।

क्रोधावेग मे माता-पिता कुछ भी कह दे, किन्तु अपने हृदय के प्रतिबिम्ब को आँखो से ओझल देख बेचैन हो उठते है। देवदत्त और उनकी अस्वस्थ पत्नी का भी यही हाल हुआ। हरीश की नीचता, दुष्टता और पराएपन से पूर्णत परिचित होने पर भी उनके हृदय मे रह-रहकर एक कसक—टीस उठने लगी।

पुत्र के पृथक्करण से हरीश की माँ को अब हृदय-रोग के दौरे आने लगे। देवदत्त की मानसिक एव आर्थिक परेशानियाँ विकट से विकटतर होती गई। उन्होने हरीश को पुन घर आ जाने के स्नेहपूर्ण सकेत भी दिए, किन्तु सब व्यर्थ।

भाग्य का खेल और पूर्वजन्म के कर्मफल का प्रायश्चित्त समझ, देवदत्त किसी तरह अपनी जीवन-डगर पर बढते रहे। अस्वस्थ पत्नी का उपचार कराने, छोटे बच्चे और पुत्री का पालन-पोषण करने और उन्हे शिक्षित करने

का गुरु गम्भीर दायित्त्व देवदत्त के सामने था। इस सबकी उपेक्षा वह कैसे कर सकते थे? स्वय तिल-तिलकर भस्म होते हुए देवदत्त अब इस जीवन मे अपने कर्त्तव्य से च्युत नही होना चाहते। पूर्वजन्म मे कदाचित् इसी प्रकार की कोई त्रुटि उनसे हो चुकी होगी, जिसका बदला पुत्ररूप मे यह हरीश ले रहा है और उनके जीवन का सारा सुख-सन्तोष छिन्न-भिन्न कर रहा है। अब वह जानबूझकर और इतना सब क्लेश पाकर, ऐसी कोई गलती नही करना चाहते, जिसका प्रायश्चित्त उन्हे आगामी जीवन मे इस प्रकार तिल-तिलकर करना पडे। अपनी इसी धारणा की मशाल जलाए, देवदत्त अपने जीवन की कण्टकाकीर्ण और अँधेरी पगडण्डी पर बढते जा रहे हैं—सदा बढते जाएँगे।

—१५—

सुमित्रा के चले जाने पर प्रफुल्ल अपनी बैठक मे जाकर एक आरामकुर्सी पर गुमसुम-सा फैल गया। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो किसी आत्मीय को दूर देश की यात्रा पर उसने भेज दिया हो। आँखो से ओझल हो जाने पर किसी बिछुडते आत्मीय की स्मृतियाँ जिस प्रकार हमारे मानस मे प्रतिबिम्बित होकर नाचने लगती है, ठीक उसी प्रकार सुमित्रा के चले जाने पर आज उससे प्रफुल्ल की जो बाते हुई थी, उनमे से कुछ उसकी आत्मा के अन्तराल मे प्रतिध्वनित-सी होने लगी।

सुमित्रा से प्रफुल्ल की आज जो भेट हुई है, उसे प्रफुल्ल किरण वेला समझ रहा है। हाँ, किरण-वेला। कारण, आज के पहले वह सुमित्रा के रूप-रङ्ग और शिक्षा-दीक्षा से ही प्रभावित था, परन्तु अब वह उसके वाक्-चातुर्य्य से भी गद्गद हो उठा है।

चचलता और गम्भीरता का साकार रूप सुमित्रा मे वह देख चुका है। यह बात साधारणत' अपवाद भले ही हो, परन्तु असम्भव नही है। पहाडी सरिता यदि कही उथली और चचल होती है, तो कही गहरी भी होती है। ठीक इसी प्रकार यह सुमित्रा कभी चचल और कभी गम्भीर रहती है। और इन दोनो विशेषताओ के बिना नारी अधूरी रहती है। मनोरमा प्रेयसी के रूप मे यदि नारी चचल न रहे, तो वह अपने उपास्य को प्रणय-सुधा का सरस पान क्या कराएगी और स्वग पम जीवन का अनुभव क्या होने देगी? इसी तरह जीवन-सघर्षो के विकट मोर्चो पर यदि नारी गहन-गम्भीर न

रहे, तो उलझी गुत्थियाँ सुलझाने मे वह समर्थ कैसे हो सकेगी ?

प्रफुल्ल को सन्तोष है कि सुमित्रा चचल होकर भी गहन-गम्भीर है। उसने स्वीकार किया कि सुमित्रा किसी पर्वत-शिखर की भाँति बहुत ऊँची है—इतनी ऊँची कि उसे सरलतापूर्वक स्पर्श नही किया जा सकता और सागर की भाँति बहुत गहरी भी है—सर्वथा अगम। सुमित्रा की इन सभी विशेषताओ को पढ-समझकर ही प्रफुल्ल आज उसकी ओर बहुत अधिक आकृष्ट हो उठा है। सुमित्रा की सरलता पर वह न्योछावर हो चुका है। कैसी भोली है यह सुमित्रा ! इतनी सारी विशेषताओ के रहते हुए भी कह रही थी—'नारी गम्भीर होती होगी, परन्तु यह सुमित्रा अभी पूरी नारी नही है—अधूरी नारी है। इस दशा मे नारी की गहराई मुझमे कहाँ हो सकती है ?'

प्रफुल्ल को लगा कि कहने को तो सुमित्रा यह बात कह गई, परन्तु उसके मन मे यह विचार शायद ही आया हो—शायद ही वह यह समझती हो कि ऐसा कहनेवाली नारी अन्य किसी सासारिक अर्थ मे भले ही अधूरी हो, परन्तु बौद्धिक प्रतिभा और मानवीय विशेषताओ का जहाँ तक सम्बन्ध है, कदापि अधूरी नही हो सकती।

जाते समय सुमित्रा अपनी आत्मीयता का जो अमृत लुटा गई है, अनजाने ही जो अतुल स्नेह दे गई है और प्रफुल्ल को अपनत्त्व के घेरे मे घेर गई है, इसे सम्भवत वह स्वय न समझती होगी। सुमित्रा ने कहा था—'कार किसी बेगाने की तो है नही।' इस बात को लेकर प्रफुल्ल कितना प्रफुल्लित हो उठा है, इसे सुमित्रा शायद कभी न समझ सकेगी। मिठाई खिलानेवाला स्वय यह नही समझ सकता कि खानेवाले को वह कितनी रुच सकी।

सुमित्रा की इस बात को प्रफुल्ल जाने कितनी बार मन-ही-मन दोहरा चुका है। प्रत्येक बार इस बात को दोहराते समय प्रफुल्ल एक अप्रकट प्रसन्नता से भर उठता है। उसने स्वीकार किया कि सुमित्रा निश्चय ही उसे अपनत्त्व की परिधि मे घेर रही है। यदि प्रफुल्ल के प्रति सुमित्रा के

हृदय मे आत्मीयता न होती, आकर्षण न होता और सहानुभूति न होती, तो आत्मीयता से ओतप्रोत यह अभिव्यक्ति सर्वथा असम्भव रहती।

प्रफुल्ल की आन्तरिक प्रसन्नता की लहरो मे एक ज्वार आ गया। उसे आशा होने लगी कि सुमित्रा के साथ उसके जीवन का शुष्क अध्याय सरसता का स्पर्श करने मे सम्भवत सफल हो सकेगा।' 'सम्भवत' शब्द पर उसने मन-ही-मन कुछ जोर दिया। इस जोर देने की भावना मे एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ था! यह प्रश्नचिह्न सुमित्रा स्वय आज के सम्भाषण के सिलसिले मे लगा गई है। जब प्रफुल्ल ने कहा था—'आप जब चाहे पूरी नारी हो सकती है' तब न केवल सुमित्रा के गालो पर दमक उठनेवाली लाली अप्रत्याशित रूप मे गहरी हो उठी थी, प्रत्युत उसने एक कटु सत्य कह डाला था, जिसका विश्लेषण कर प्रफुल्ल अभी अपनी आकाक्षा के पूरा हो जाने का विश्वास नही कर सकता। उसने साफ कह दिया था—'जिस परिणय को आप इतना सरल समझते है—आप ही नही, आम तौर पर सारा पुरुष-वर्ग एक खेल समझता है, वह नारी के लिए खेल नही, बल्कि जीवन-मरण का सौदा होता है।'

जीवन-मरण का सौदा? प्रफुल्ल ने स्वीकार किया कि सुमित्रा ने बात तो बावन तोले पाव रत्ती ठीक कही है। दो जीवन-सूत्र जब किसी एक माला के मनके बनकर परस्पर गुम्फित होते है, तब उनका पृथक्करण सहज-सम्भव नही रह जाता। परन्तु प्रफुल्ल को लगा कि आम तौर पर जो विवाह होते है, उनमे कौन इतनी गहराई तक जाता है और इतना विचार-विमर्ष करता है? लेकिन उसी क्षण प्रफुल्ल के विवेक ने उसे झकझोर दिया—'आम तौर पर कोई इतनी गहराई तक नही जाता, तो क्या सुमित्रा भी परिणय-जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर कोई विचार-विमर्ष न करे—गहराई मे न उतरे?'

प्रफुल्ल को अपने-आप पर हँसी आ गई। उसे लगा कि यह सब आखिर वह क्या सोच रहा है और क्यो सोच रहा है? सुमित्रा ने जो बात कही है,

वह आम तौर पर परिणय के सम्बन्ध मे पुरुष-वर्ग की धारणा सूचित करनेवाली है । फिर जो-कुछ उसने कहा है, उसमे कही कोई अतिरजित अथवा एकागी आक्षेप भी नही है ।

फिर, प्रफुल्ल को सहसा ऐसी व्यक्तिगत बात भी तो नही करनी थी। माना कि बात सर्वथा अप्रासगिक नही थी। सुमित्रा ने जब स्वय को अधूरी नारी कहा था, तभी प्रफुल्ल ने परिणय की बात करते हुए कह दिया था कि यह तो आपके हाथ की बात है। आप जब चाहे, पूरी नारी हो सकती है। हो सकता है, सुमित्रा ने यही समझ लिया हो कि मै अपने साथ ही उसके परिणय का प्रस्ताव इस रूप मे रख रहा हूँ। परन्तु इसमे बुराई क्या है ? सुमित्रा यदि यही समझ चुकी हो, तो प्रफुल्ल इसे अपने लिए अच्छा ही समझता है। आज नही तो कल, जब उसे यह प्रस्ताव उसके सामने रखना ही है, तब इस प्रकार प्रसगानुसार परोक्ष रूप मे लक्ष्यबेध करनेवाली अभिव्यक्ति को निषिद्ध क्यो समझा जाए ?

प्रफुल्ल जब सुमित्रा की बातो के विश्लेषण मे इस प्रकार उलझा हुआ था, तभी नौकर ने आकर कहा—'नागरजी आए है, सरकार !'

लेकिन सरकार थे कि उनका ध्यान भङ्ग नही हुआ।

नौकर ने कुछ और निकट पहुँच, तनिक तेज स्वर मे दोहराया—'नागरजी आए है, सरकार !'

अब कही प्रफुल्लजी की समाधि भङ्ग हुई, सो भी नौकर की बात शायद वह पूरी तरह नही सुन सके। इसीलिए कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए पूछा —'क्या बात है भोला ?'

भोला को हँसी आ रही थी, परन्तु उसने आती हुई हँसी को सय न दबाते हुए तीसरी बार नागरजी के आने की बात कह दी। भोला को हँसी आने का कारण था उसने आज तक कभी अपने स्वामी—प्रफुल्ल—को इस प्रकार ध्यानस्थ नही देखा। सदा उन्हे सजग-सतर्क ही पाया है। इसीलिए अपने मालिक को इस प्रकार ध्यानस्थ देख, उसे हँसी आ रही थी। परन्तु प्रफुल्ल

की ऐसी मनोदशा का कारण, बहुत चेष्टा करने पर भी भोला समझ नही सका। उसे समझने का अवसर भी नही मिला। आगन्तुक से उसके मालिक की जो घनिष्ठता है, उसे भोला अच्छी तरह जानता है। यह कभी हो नही सकता कि नागरजी इस हवेली मे आकर प्रफुल्ल से बिना भेंट किए वापस चले जाएँ। उनका नाम सुनते ही प्रफुल्ल मानो उछल पडता है। इस दशा मे भोला को एक ओर यह चिन्ता थी कि नागरजी को व्यर्थ ही प्रतीक्षा करनी पड रही होगी, और दूसरी ओर उसे अपने मालिक की इस परिवर्त्तित मनोदशा का कारण जानने की भी चिन्ता बढ रही थी। इसी उलझन मे वह समझ नही सका कि उसके मालिक आज इस प्रकार क्यो ध्यानस्थ है।

भोला की बात सुन, प्रफुल्ल ने कहा—'बहुत अच्छा हुआ कि नागर आ गए। इस समय मुझे उनकी ही जरूरत थी।'

'सरकार ने हुक्म दिया होता, तो   ।'

'हुक्म!' प्रफुल्ल ने कहा और मन-ही-मन सोचा कि पहले से क्या मैं जानता था कि सुमित्रा की भेंट के बाद उसकी बातो को लेकर मैं इतना उलझ जाऊँगा और नागर-जैसे अभिन्न मित्र की उपस्थिति आवश्यक समझने लगूँगा।

'हाँ, सरकार!' भोला ने फिर अपने मालिक को मौन देखकर कहा—'आपने हुक्म दिया होता, तो मैं उन्हे कभी का बुला लाया होता।'

'ओह! मैं फिर   ।' प्रफुल्ल ने एक क्षण रुककर कहा—'फिर कुछ सोचने लगा, भोला! हाँ, तुम जाओ और नागर को फौरन ले आओ।'

'जो हुक्म, सरकार!' कहकर भोला बाहर चला गया।

—१६—

बैठक मे नागर के पहुँचते ही, प्रफुल्ल ने आरामकुर्सी से उठते हुए कहा—'बडी उम्र है तुम्हारी, नागर। मै तुम्हारी ही याद कर रहा था।'

'क्या बात है, भाई ?' नागर ने प्रफुल्ल के निकट आकर एक कुर्सी पर बैठते हुए पूछा—'आखिर मेरी याद करने की क्या आवश्यकता आ पडी इस समय ?'

'यह सब अभी बतलाऊँगा।' प्रफुल्ल ने पुन आरामकुर्सी पर बैठकर सिगरेट-केस नागर की तरफ बढाते हुए कहा—'बस, यही समझ लो कि इस समय मुझे तुम्हारी बडी जरूरत थी।'

'मालूम पडता है, आज आप किसी गहरी उलझन मे है।' नागर ने ध्यानपूर्वक प्रफुल्ल की मुद्रा को देखते हुए कहा।

नागर से उम्र मे प्रफुल्ल बडा है, इसलिए वह अपने बडे भाई की भाँति ही प्रफुल्ल का आदर करता है। फिर आर्थिक स्थिति का जहाँ तक सम्बन्ध है, प्रफुल्ल बहुत ऊँचे स्तर पर है। यह तो प्रफुल्ल का सौजन्य है कि सहपाठी के नाते वह निर्मल नागर को अब तक अपनत्व की परिधि मे घेरे हुए है। कोई दूसरा धनिक-पुत्र होता , तो कभी का किनारा काट चुका होता। परन्तु प्रफुल्ल है कि नागर के किसी भी सार्वजनिक प्रस्ताव पर, बिना उसकी गहराई मे उतरे ही, हाथ खोलकर क्रियात्मक सहयोग देता रहता है। इसी गान्धी महिला-विद्यालय की स्थापना के समय निर्मल ने जब जैसा कहा, प्रफुल्ल ने वही किया। यह बात दूसरी है कि सार्वजनकि मच पर जाकर यशार्जन

'नही, नागर! मै अपनी उलझन और परेशानी म अकेला ही नही घुलना चाहता। तुम्हे भी मेरे साथ घुलना होगा—परेशान होना होगा।'

'तो मै कब अस्वीकार करता हूँ?' नागर ने सहानुभूति के स्वर मे कहा—'मै स्वय नही चाहता कि आप इस प्रकार घुलते रहे। बताइए न, आप कहना क्या चाहते है?'

'बतलाता हूँ, नागर!' प्रफुल्ल ने अपना अधजला सिगरेट ऐश-ट्रे मे छोडते हुए कहा—'तुमने बिलकुल ठीक कहा है कि जो विस्थापित विधवाएँ अथवा कुमारियाँ दुर्दिन की मारी है, उन्हे जीवन की सुविधाएँ प्रदान करना मानवता का बहुत बडा आदर्श है। लेकिन जो लोग ऐसी नारियो अथवा कुमारियो के साथ विवाह कर रहे है, वे मानवता का आदर्श उपस्थित करने की भावना से नही, बल्कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ही बहती गगा मे हाथ धो रहे है।'

'कौन, किस उद्देश्य से, क्या कर रहा है, इसका लेखा-जोखा रखना न तो सम्भव है, न आवश्यक।' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'परन्तु मानव-कल्याण की दृष्टि से देखा जाए, तो इस कार्य को हमे मानवता का आदर्श ही स्वीकार करना पडेगा। कारण, नारियो अथवा कुमारियो की हमारे यहाँ कोई कमी तो है नही, जो विस्थापित और विवश-विपन्न नारियो अथवा कुमारियो से विवाह करने मे यहाँ के पुरुष-वर्ग का स्वार्थ सिद्ध होता हो।'

'तुम अभी मेरा आशय नही समझे, नागर!' प्रफुल्ल ने आरामकुर्सी से उठकर कमरे मे चहलकदमी करते हुए कहा—'मै यह कह रहा था कि 'खाओ-पियो और मौज उडाओ' के अनुसार जीवन बितानेवालो की आज कमी नही है। दुर्दिन की मारी इन नारियो और कुमारियो को खिलौना समझ, कुछ दिनो तक अपने पास रखना और दूध की मक्खी की तरह फेक देना ऐसे लोगो के लिए साधारण-सी बात है। ऐसे उदाहरणो की कमी नही है।'

'प्रत्येक बात के दो पहलू होते है, भाई साहब!' नागर ने कहा—'जो लोग ऐसा करते है, वे मानवता के प्रति विश्वासघात करते है।'

'अच्छा, विश्वासघात करनेवालो को बात अब हम न करेगे। हाँ, हमारे गान्धी महिला-विद्यालय की आचार्या सुमित्राजी भी तो विस्थापित कुमारी है और दुर्दिन की मारी भी है बेचारी।' प्रफुल्ल ने अब अपनी बात प्रारम्भ करने की चेष्टा की।

'यह तो मै उनकी नियुक्ति के समय ही आपको बतला चुका हूँ।' नागर ने कहा—'वह और मेरी पत्नी तो सहोदरा बहिनो की भाँति एक-दूसरे को मानती है। ये दोनो एक ही नगर की है।'

'ओह! अब समझा!' प्रफुल्ल को कुछ हँसी आ गई।

'क्या समझे, भाई साहब?'

'यही कि सुमित्राजी आपकी साली है।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'साली का सम्बन्ध भी इस दुनिया मे एक ही है!'

'मालूम होता है, आज आप गहरी तरग मे है।' नागर के ओठो पर भी मुसकराहट नाच उठी।

'तरङ्ग और मस्ती के बिना मानव की जिन्दगी छोटी हो जाती है, उसका जीवन निरानन्द हो जाता है, नागर!' प्रफुल्ल ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—'जहाँ तक बने, इसीलिए हमे प्रसन्न और मस्त रहना चाहिए।'

'लेकिन यह सदा सम्भव नही, भाई साहब! दुनिया की परेशानियाँ औसत मानव की प्रसन्नता और मस्ती को छीन लेती है। हाँ, आप-जैसे कुछ भाग्य-शाली निश्चय ही प्रसन्न और मस्त रह सकते है।'

'तो शायद भाग्यशाली से तुम्हारा मतलब धन-पैसे से है, नागर!' प्रफुल्ल ने गम्भीर होते हुए कहा—'लेकिन पैसा किसी को प्रसन्नता और मस्ती नही दे सकता।'

'मै आपकी इस बात से सहमत नही।'

'क्यो?

'इसलिए कि भौतिक चकाचौध के आधुनिक युग मे धन-पैसा ही वह शक्ति है, जो मानव को दुनिया के सभी सुख जुटा देता है। मन उदास हुआ, तो पैसे के सहारे धनिक व्यक्ति मनोरजन के पचासो मार्ग खोज सकता है और उदासी को दूर भगा सकता है। अस्वस्थ हुआ, तो पैसे लुटाकर महँगे-से-महँगा उपचार कर पुन स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसके पास पैसा नही, वह बेचारा इन सब बातो को आकाश-कुसुम ही समझता है, और अपने भाग्य को सदा कोसता रहता है।'

'ओहो!' प्रफुल्ल ने विद्रूप के स्वर मे कहा—'तो यह भी कह डालो नागर कि पैसेवाले मृत्यु को भी जीत सकते है और सदा इस ससार के रगमच पर अपना अभिनय कर सकते है।'

'एक मृत्यु-विजय को छोडकर बाकी सब कुछ कर सकता है पैसेवाला।' नागर ने कहा—'यश, प्रतिष्ठा, क्या नही मिल जाता पैसे के बल पर?'

'भाई मेरे, तुम बडी गलत-सी बात कह रहे हो।' प्रफुल्ल ने कहा—'पैसे-वाले की आत्मा से पूछो कि तुम्हारी बाते कहाँ तक ठीक है। तुम जानते ही हो, पैसे की मुझे कोई कमी नही। मान-सम्मान की भी कमी नही। परन्तु क्या तुम यह समझते हो कि मै पैसो को देखकर सदा प्रसन्न और मस्त रहा करता हूँ? यदि तुम ऐसा समझते हो, तो मै फिर कहूँगा कि बहुत गलत समझ रहे हो। पैसे का विचार आते ही मै सदा निन्नयानबे के फेर मे पड जाता हूँ और भूख-नीद-जैसी आवश्यक बाते भी भूल जाता हूँ। पैसो के सहारे मनुष्य चन्द घण्टो या अल्प काल के लिए भले ही मनोरजन के उपादान जुटा ले, मस्ती की लहरो पर बह ले, परन्तु आन्तरिक सुख और आनन्द का वह स्पर्श भी नही कर सकता।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'मेरी स्वर्गीया पत्नी शैल सस्कृत पढी-लिखी थी। धन के सबध मे वह एक सुन्दर श्लोक सुनाया करती थी

जगल्लुब्धा धनमय कामुका कामिनीमयम्।
नारायणमय धीरा पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष.॥

'इस श्लोक को मैं कभी भूल नही सकता, नागर! तुम भी इसे याद कर लो, तो धन को सर्वोपरि कभी न समझोगे।'

'लेकिन मैं सस्कृत का ज्ञाता नही हूँ।' नागर ने कहा—'इसका अर्थ भी मुझे समझा दीजिए न!'

'ओह! मैं यह बात भूल ही गया था। इस श्लोक का अर्थ है कि धन ही जिसका ध्येय है, वह जगत् भर को धन-सग्रह का साधन समझता है। दूसरे शब्दो मे यह कह ले कि शोषण-वृत्ति उसमे घर कर लेती है और धनार्जन के अतिरिक्त उसका दूसरा कोई उद्देश्य ही नही रह जाता। इसी तरह कामी पुरुष जगत् को स्त्री-प्राप्ति के साधन-रूप मे देखता है। परन्तु धीर साधक व्यक्ति ईश्वर-प्राप्ति को जीवन का ध्येय बनाता है, अत. वह ज्ञान की ऑखो से जगत् को नारायण-रूप मे देखता है। इसीलिए मैं इस धन को जीवन का साध्य—ध्येय—नही मानता।'

'हो सकता है', नागर ने कहा—'इसका यही कारण हो कि मेरे पास आपके बराबर धन-सम्पत्ति नही, इसीलिए मैं ऐसा समझ रहा हूँ।'

'बिलकुल यही बात है, नागर! अपनी स्थिति से किसी भी मानव को सन्तोष नही रहता, और यही हमारे दु ख का मूल कारण है। इसीलिए मैंने कहा था कि जहाँ तक हो सके, हमे प्रसन्न और मस्त रहना चाहिए।'

'अब समझा!' नागर ने कहा—'इसीलिए आप साली का प्रसग आते ही मस्ती की लहरो पर बहने लगे थे।'

'हाँ भाई!' प्रफुल्ल ने कहा—'लेकिन तुम जाने कहाँ से कहाँ बहा ले गए मुझे! मैं कह रहा था, साली का सम्बन्ध इस ससार मे बडा ही मधुर है। फिर सुमित्रा-जैसी कुमारी जिसकी साली हो, उसके भाग्य पर किसे ईर्ष्या न होगी?'

'तब हम दोनो बराबर हो गए!' नागर ने कहा—'आप कुबेर-जैसी सम्पत्ति के स्वामी है और मैं सुमित्रा-जैसी रूप-परी और शिक्षिता साली का जीजा। मैं आपसे ईर्ष्या करूँ और आप मुझसे!'

'अच्छा, अब इस मजाक को छोड, हम कुछ काम की बाते करे, नागर!' एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'मै सोचता हूँ, यदि दुर्दिन की मारी सुमित्राजी जात-पॉत का बन्धन तोडकर विवाहित जीवन बिताने की इच्छुक हो, तो मै ।' कहते-कहते प्रफुल्ल रुक गया।

'तो आप उसके साथ विवाह करने को तैयार है?' नागर ने उत्सुकता के साथ पूछा।

'हॉ, नागर! तुम जानते हो, मेरी पत्नी का निधन हो जाने से मेरा जीवन एकदम मरुस्थल-सा हो उठा है। मुझे यह घर मानो काटने को दौडता है। यदि शैल अपने प्राणो का प्रतिबिम्ब—पुत्र—न छोड जाती, तो सम्भवत कलकत्ते से मै यहॉ कभी आता ही नही।'

'मै यह सब जानता हूँ, भाई साहब!' नागर ने कहा—'और मै समझता हूँ, आपका यह प्रस्ताव सुमित्रा के लिए स्वर्ण-सयोग सिद्ध होगा।'

'यह अभी नही कहा जा सकता।' प्रफुल्ल ने धीमे स्वर मे गम्भीर मुद्रा से कहा।

'आप कहे तो मै इसका पता लगा सकता हूँ।'

'मै जानता हूँ कि तुम अपनी पत्नी के द्वारा यह पता सहज ही लगा सकते हो, नागर। परन्तु इस मामले मे मै स्वय आगे बढना चाहता हूँ। मै समझता हूँ, यही मार्ग ठीक होगा। तुम्हारी क्या सम्मति है?'

'यह अधिक ठीक होगा, बशर्त्ते कि सुमित्रा इस सबध मे खुलकर बात करे। यो वह इतनी आधुनिका है कि उसे दूसरी कुमारियो की तरह झिझक नही होनी चाहिए।'

'तब ठीक है!' प्रफुल्ल ने कहा—'और अब मै बतलाऊँ, आज क्यो मै तुम्हारी याद कर रहा था? बस, इसी मामले मे मुझे तुम्हारी सम्मति लेनी थी।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने अपने नौकर को आवाज दी—'भोला!'

आवाज सुनते ही भोला हाँफता हुआ आ पहुँचा। कहा—'आज्ञा, मालिक ?'

'अरे, चाय-नाश्ता नही लाओगे आज ? यह नागर कब से बैठे है।'

'तैयार है, मालिक। बस, आपके हुक्म की राह देख रहा था।'

'अच्छा, तो ले आ।'

'जी, सरकार।' कहकर भोला चला गया।

'तो मेरी सम्मति लेकर अब रसगुल्ले खिलाए जा रहे है ?' नागर ने कहा—'जो कही, यह सम्मत्ति आपके विरोध मे दी जाती, तो शायद ...।'

'चाय और रसगुल्ले हरगिज न मिलते।' मुसकराते हुए प्रफुल्ल ने कहा—'यही न, नागर। लेकिन यह क्यो भूल जाते हो कि सम्मति-असम्मति के परे भी तुम्हारा जो अधिकार और स्नेह मुझ पर है, वह तुम्हे कभी चाय और रसगुल्लो से वचित नही रख सकता।'

'लीजिए, अब आप मस्ती की लहरो से हटकर गम्भीरता के तट पर जा खडे हुए।' नागर ने कहा—'मै तो आपके ही उपदेश पर मस्ती और तरग का स्पर्श करने की चेष्टा कर रहा था।'

अब तक भोला चाय का ट्रे लेकर आ पहुँचा था और एक छोटी मेज पर चाय-नाश्ता सजाकर रखने लगा था।

'तब मुझे कुछ नही कहना है, नागर।' प्रफुल्ल ने कहा—'मस्ती और तरग का स्पर्श तुम अधिक-से-अधिक किया करो। अच्छा, चलो, चाय पिएँ।'

'चलिए।' कहकर नागर भी प्रफुल्ल के साथ चाय की मेज की तरफ बढ गया।

चाय पीते हुए प्रफुल्ल ने पूछा—'यह सब तो हुआ, नागर, लेकिन आज तुम किसी विशेष कार्य से तो नही आए थे ? मेरा मतलब यह कि अब तक तो मेरा ही चर्खा चलता रहा। परन्तु अब तुम अपनी बात नि.सकोच कह सकते हो।'

'यो ही चला आया था।' नागर ने रसगुल्ले खाते हुए कहा—'कोई विशेष काम नही था। सोचा, आपसे मिलकर कुछ गपशप कर लूँ, नही तो आप दो-एक दिन मे कलकत्ते ।'

'नही नागर! इस बार इतनी जल्दी कलकत्ते नही जा रहा हूँ। दो-एक सप्ताह इस बार यहाँ ठहरने का इरादा है।'

'मै भी क्या कह बैठा!' नागर ने कहा—'जब सुमित्राजी से आप परिणय-प्रस्ताव करनेवाले है, तब कुछ सप्ताह यहाँ ठहरना ही होगा।'

'लेकिन एक बात है, नागर। अभी हाल तुम यह बात किसी से न कहना।'

'मुझे क्या आवश्यकता है किसी से कहने की!'

'अपनी पत्नी से भी नही कहोगे?'

'यह वादा करना तनिक कठिन है।'

'वादा मै स्वय नही कराना चाहता। कारण, पति-पत्नी के बीच दुनिया की कोई भी बात साधारणत छिपी नही रहती।' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा।

'लेकिन मेरी पत्नी—नलिनी – से आपको इस सबध मे किसी प्रकार की हानि की आशका नही करनी चाहिए।'

'ओहो! मै क्या जानता नही यह सब!' प्रफुल्ल ने कहा—'बल्कि मेरा लाभ ही हो जाएगा कुछ।'

इसी बीच नौकर ने आकर खबर दी कि डाक्टर राय आए है और प्रफुल्लजी से भेट करना चाहते है। प्रफुल्ल ने नौकर से कहा—'उन्हे सिगरेट पिलाओ तब तक, और कहो कि मै अभी बाहरी बैठक मे आ रहा हूँ।'

चाय-नाश्ता लगभग समाप्त हो चुका था। फिर भी प्रफुल्ल ने कहा—'नागर, तुम अभी और रसगुल्ले खाओ और यही बैठो। मै डाक्टर राय से बात करके अभी आता हूँ।'

'नही, भाई साहब !' नागर ने कहा—'अब आप आज्ञा दे, तो मै भी जाना चाहता हूँ। काफी समय बैठ चुका और रसगुल्ले भी जी भरकर खा चुका।'

'मुझे कोई आपत्ति नही !' प्रफुल्ल ने सिगरेट-केस नागर की तरफ बढाते हुए कहा—'तुम जा सकते हो।'

नागर ने एक सिगरेट सुलगाया और अभिवादन कर अपने घर की राह ली।

–१७–

प्रफुल्ल से बिदा लेकर नागर जब अपने घर की ओर एक रिक्शे पर बढे जा रहे थे, तब सहसा उन्हे लगा कि डिप्टी कलैक्टर सिनहा साहब से भी क्यो न आज भेट कर ली जाए। कई दिनो से उनसे भेट नही हुई । रास्ते मे ही उनका बॅगला पडता है। वह बडे ही मिलनसार और मृदुभाषी है। रजनी और लता मे बडी घनिष्ठता है । दोनो एक-दूसरे के यहाँ बहुधा चली जाती है ।

सिनहा साहब के बँगले के निकट जब रिक्शा पहुॅचा, तो नागर ने रिक्शे-वाले से कहा—'सामने के पीले बॅगले मे मुझे छोड दो, रिक्शेवाले।'

'अच्छा, सरकार!' कहते हुए रिक्शेवाले ने सामने के बॅगले मे जाने के लिए रिक्शा मोड दिया।

सिनहा साहब ने अपने बॅगले के सामने जो छोटा-सा उपवन गुलजार कर रक्खा है, उसे प्रभात-वेला की सुनहरी सूर्य्य-रश्मियो और सान्ध्य वेला की पीली-पीली निष्प्रभ होती धूप मे नागर कई बार देख चुके है। बडी सुरुचि के साथ सिनहा साहब ने इस उपवन मे देशी-विदेशी फूलो के पौधे और लताएँ लगा रक्खी है।

इस समय क्षीण चॉदनी के झीने-से ऑचल ने इस उपवन को ही नही, समस्त वसुन्धरा को मानो छिपा रक्खा था। इस दशा मे उपवन का नेत्र-रजक सौन्दर्य-पान करने मे तो नागर असमर्थ रहे, परन्तु बाहरी फाटक के भीतर रिक्शे के प्रवेश करते ही, रजनीगन्धा की मादक सुगन्ध से नागर के

मन-प्राण एक अनोखी मस्ती से मस्त होकर अनायास झूम उठे।

बँगले के बाहरी बरामदे के निकट पहुँच, नागर ने रिक्शे मे उतरकर रिक्शेवाले को छ आने देकर बिदा कर दिया।

बरामदे मे बैठे हुए नौकर ने, नागर को देखते ही पहचान लिया। झुककर अभिवादन करते हुए कहा—'साहब को मै अभी खबर देता हूँ, हुजूर! आप आराम से बैठिए।' और बरामदे मे पडी कुर्सियो की ओर सकेत कर वह भीतर चला गया।

दो-तीन मिनट के भीतर ही नौकर ने आकर नागर को खबर दी—'साहब आपको बुला रहे है।'

नौकर के सकेत पर नागर उसके साथ सिनहा साहब के बैठकखाने की ओर बढ गए। दरवाजे पर पडे हलके नीले रङ्ग के पर्दे को नौकर ने एक हाथ से तनिक सिकोड दिया और नागर ने भीतर प्रवेश किया।

सिनहा साहब ने कुर्सी से उठते हुए सोल्लास कहा—'आइए नागरजी, जयहिन्द!'

'जयहिन्द!' दोनो हाथ जोडते हुए नागरने कहा—'आपके आराम मे दखल देने के लिए पहले ही क्षमा माँग लूँ।'

'यह लखनवी तकल्लुफ रहने दीजिए!' सिनहा साहब ने मुसकराते हुए कहा—'यह बताइए, इस समय कहाँ से आ रहे है?'

'प्रफुल्लजी की कोठी से लौटते हुए घर जा रहा था। सोचा, बहुत दिनो से आपसे भेट नही की, मिलता चलूँ।'

'इधर तो सचमुच बहुत दिनो से आपने दर्शन नही दिए। इस बीच दो-एक बार मै आपके कुशल समाचार रजनी से पूछ चुका हूँ।' कुछ क्षण रुककर सिनहा साहब ने तनिक जोर से पुकारा—'रजनी!'

'इस समय रजनी बेटी पढ रही होगी!' नागर ने कहा—'क्यो उसे बुला रहे है?'

सिनहा साहब कोई उत्तर दे कि बगल के कमरे से रजनी बैठक मे आ पहुँची। सामने नागरजी को देखा, तो एक क्षण के लिए हरिणी-सी चौक उठी, फिर दोनो हाथ जोड, अभिवादन करते हुए कहा—'ओह! नागर चाचा आए है।'

'हाँ, बेटी!' नागरजी ने कहा—'बहुत दिनो से नही आ सका था, इसीलिए चला आया।'

'आखिर इस कैफियत की जरूरत ही क्या है?' सिनहा साहब ने कहा। फिर रजनी की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए कहा—'नागर चाचा के लिए चाय तैयार कराओ, बेटी!'

'न बेटी!' नागर ने तत्काल टोक दिया—'मै इस समय प्रफुल्लजी के यहाँ से आ रहा हूँ। चाय बहुत पी चुका हूँ। नाश्ता भी कर चुका हूँ। पेट के साथ अब अन्याय नही करना चाहता। केवल पान के बीडे भेजवा दो, बस!'

'मेरे यहाँ आकर आप बिना चाय पिए न जा सकेगे।' रजनी ने स्नेह-सिक्त आग्रह से मुसकराते हुए कहा—'मेरी सहेली लता कभी मुझे बिना चाय-नाश्ते के नही आने देती।'

'तो लता को तुम भी बिना चाय-नाश्ते के कभी न जाने दिया करो।' नागर ने भी मुसकराते हुए कहा।

'नही, आपको भी मै बिना चाय-नाश्ते के न जाने दूँगी। मै अभी ला रही हूँ।' और रजनी तेज पगो से भीतर चली गई।

'बडी चतुर है, यह रजनी!' नागर ने सिनहा साहब से कहा—'कितनी आत्मीयता से ओतप्रोत है इसका व्यवहार। जब कभी लता के साथ मेरे घर पहुँचती है और मुझसे बात करती है, तब मुझे लगता है, मानो लता ही रजनी के रूप मे बोल रही है। काश! ये दोनो लडकियाँ पुत्र होती!'

'तब इनसे हमे यह आत्मीयता शायद न मिलती।' सिनहा साहब ने गम्भीर होते हुए कहा—'आजकल घर-घर पुत्रो की उच्छृङ्खलता

और माँ-बाप के प्रति उनकी उद्दण्डता ऐसा विकट रूप दिखला रही है कि मै रजनी-जैसी पुत्री पाकर स्वय को बडा सौभाग्यशाली समझ रहा हू। और,यही बात मै आपके लिए भी कहना चाहता हूँ कि लता-जैसी पुत्री पाकर आपको पुत्र के अभाव की बात कभी स्वप्न मे भी नही सोचनी चाहिए।'

'मै एक बात कहना चाहता हूँ, सिनहा साहब!' नागर ने कहा—'युग बदल चुका है और युग के साथ ससार की मान्यताएँ भी तेजी से बदल रही है। मै समझता हूँ, जिन पुत्रो की बात आप कह रहे है, उनके माता-पिता पुराणपथी होगे और युग के साथ अपनी सन्तान के व्यवहारो को सहन करने के आदी न होगे?'

'नही, नागरजी!' सिनहा साहब ने सिगरेट-केस नागर की ओर बढाते हुए कहा—'मै यह बात नही मानता। यदि मै दो-चार घरो की बात कहता, तो आप यह तर्क पेश कर सकते थे। परन्तु आपने मेरे शब्दो पर शायद ध्यान नही दिया। मैने कहा है, घर-घर ऐसा हो रहा है। मै कहता हूँ, दो-चार माँ-बाप दकियानूसी हो सकते है, लेकिन सभी पुराणपथी है, इसे मै कभी स्वीकार नही कर सकता।'

'मालूम पडता है, इधर कोई जबरदस्त घटना आपने अत्यन्त निकट से देखी है और उससे प्रभावित हो चुके है।'

'हाँ, भाई!' सिनहा साहब ने अपना सिगरेट सुलगाते हुए कहा—'पण्डित देवदत्त शर्मा को तो आप जानते है न!'

'क्यो नही!' नागरजी ने भी अपना सिगरेट सुलगाया और उसका जोरो का कश लेते हुए कहा—'वही न, जिन्होने गत वर्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाहोपलक्ष्य मे शानदार प्रीतिभोज मे हम लोगो को आमन्त्रित किया था?'

'हाँ-हाँ, बिलकुल वही!' सिनहा साहब ने कहा—'शर्माजी 'त्रिवेणी' जैसी सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका के प्रख्यात सम्पादक है। सुलझे हुए विचारो के और अत्यन्त उदार प्रकृति के है!'

'इस वर्ष उनका वह पुत्र प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी मे

बी० ए० की परीक्षा भी तो उत्तीर्ण कर चुका है।' नागर ने कहा।

'यह कहिए कि ससम्मान बी० ए० हुआ है। सस्कृत मे उसका स्थान विश्व-विद्यालय मे शीर्ष रहा। समावर्त्तन-सस्कार मे उसे इसके उपलक्ष्य मे रज - पदक प्रदान किया जाएगा।' सिनहा साहब ने सिगरेट की राख 'ऐश-ट्रे' मे गिराते हुए कहा—'लेकिन आप जानते न होगे, इसी लडके ने अपने माँ-बाप से विद्रोह कर दिया है।'

'विद्रोह!' नागरजी ने साश्चर्य दोहराया। मानो उन्हे इस कथन की सत्यता पर विश्वास नही हुआ।

'हाँ भाई, विद्रोह!' सिनहा साहब ने सिर हिलाते हुए कहा— 'क्यो जनाब, आपको अभी से आश्चर्य होने लगा। आप अपने तर्क पर दृढ रहिए और कह दीजिए कि युग के साथ शर्माजी न चल सके होगे।'

'मै जानता हू, अपने इजलास मे आप बडे-बडे वकीलो को निरुत्तर कर देते है। फिर भला, मेरी क्या हस्ती, जो आपके सामने किसी तर्क पर दृढ रह सकू?'

'लेकिन यह इजलास नही है, नागरजी! यह तो घर मे बैठे हुए दो मित्रो का सम्भाषण-मात्र है। इसीलिए मुझे आपके आश्चर्य पर इतना कहना पडा।'

'मेरे आश्चर्य का एक कारण है, सिनहा साहब!'

'वह क्या?'

'यह कि शर्माजी का लडका मुझे कभी उद्दण्ड प्रतीत नही हुआ, फिर माँ-बाप से वह कैसे विद्रोह कर उठा!'

'ओफ्फोह!' सिनहा साहब ने कहा और जोरो से हँस पडे। हँसी शान्त होने पर बोले—'अजी, नई पत्नी का नशा इस दुनिया मे क्या नही करा सकता!'

'आप ठीक कह रहे है। किते न औगुन हम किए, वय नय चढती बार!' नागर ने गभीर होते हुए कहा—'यह विद्रोह किस रूप मे किया इस लडके ने?'

'इस रूप मे कि फर्स्ट क्लास ग्रेजुएट होते ही उसने माँ-बाप से पृथक् हो जाने की घोषणा कर दी। पिता से गर्मागर्म बातचीत ही नही, उनका अपमान भी कर बैठा । पास-पडोसवालो ने जी भरकर यह तमाशा देखा। लडका अपनी पत्नी को लेकर, बीमार माँ की तनिक भी चिन्ता किए बिना,ससुराल चला गया।'

'एक बात है, सिनहा साहब!' नागरजी ने इस प्रसग मे दिलचस्पी लेते हुए कहा—'शर्माजी को मै भी थोडा-बहुत जानता हूँ। जैसा आपने कहा है, वह उदार ओर सुलझे हुए विचारो के अवश्य है, परन्तु स्वाभिमानी भी बहुत बडे है। क्रोध उनकी नाक पर बैठा रहता है। हो सकता है, यही क्रोध इस विद्रोह का कारण बन बैठा हो।'

'जो भी हो , परन्तु मै स्वय शर्माजी से इस बीच मिल चुका हू। मुझे उन्होने सारी कहानी सुना दी है। बेचारे शर्माजी जिन परिस्थितियो मे अपने जीवन की साँसे ले रहे है, उन्ही के कारण वे रुक्ष और चिडचिडे हो गए है। यही कारण है, उनका क्रोध बहुत जल्द भभक उठता है । कह रहे थे, जब से उन्होने होश सँभाला हे, अब तक सघर्षो का निरन्तर सामना कर रहे है। इस पुत्र के निर्माण मे उन्होने अपने जीवन का सर्वोत्तम भाग लगा दिया । जब तक बारह वर्ष का यह लडका नही हो गया, शर्माजी की कोई सन्तान जीवित नही रह सकी, अतः यही लडका इकलौते बेटे के रूप मे रहा। यद्यपि शर्माजी जानते थे कि इस लडके की जन्मपत्री मे ऐसे ग्रह पडे है कि बारह वर्ष का जब तक यह न हो जायगा, तब तक इसके भाई-बहिन जीवित न रहेगे, फिर भी इस लडके को देख-देखकर वह सदा सन्तुष्ट रहे। इसके पालन-पोषण और शिक्षण मे उन्होने कभी कोई कमी नही आने दी। गत वर्ष इसका विवाह भी कर दिया। इस विवाह मे न केवल रही-सही सारी पूँजी शर्माजी ने लगा दी, बल्कि पाँच-सात सौ रुपए का कर्ज भी उन्हे लेना पडा, जिसका भुगतान अब तक कर रहे है।'

'तो जहाँ लडके का विवाह किया, वहाँ से कोई रकम नही मिली शर्माजी को?' नागर ने प्रश्न किया।

'रकम!' सिनहा साहब हँसने लगे, फिर बोले—'यहाँ भी शर्माजी की उदारता ने स्वय उन्हे छला। जिस अध्यापक की पुत्री के साथ यह विवाह हुआ, उसकी स्थिति ऐसी नही थी कि ग्रेजुएट वर के अनुकूल नेग दे सकता। परन्तु लडके की रुचि देखकर शर्माजी ने रकम का विचार न कर विवाह कर डाला। सोचा था, सस्कृत पढी-लिखी पुत्र-बधू उनके घर को अपने आगमन से गुलजार कर देगी और भारतीय मान-मर्यादा का ध्यान रखेगी परन्तु लडके के पितृद्रोही हो जाने से यह सब परखने का अवसर भी नही मिल सका। जो-कुछ अवसर हाथ लगा, उससे शर्माजी को इस ओर से भी निराशा ही हाथ लगी। उधर अध्यापक महोदय ने विवाह के सभी नेगो मे मात्र पाँच सौ रुपया दिया और अपने समधी शर्माजी के साथ जो व्यवहार किया, वह घोर अपमानजनक रहा।'

'अध्यापक महाशय अवसरवादी प्रतीत होते है। उन्हे शर्माजी का आजीवन ऋणी रहना था और खुलकर शर्माजी का सम्मान कर उन्हे सदा प्रसन्न रखना था। इसका दुष्परिणाम भी अध्यापक महोदय को कभी-न-कभी भोगना पडेगा। अच्छा, इस विद्रोह का मूल कारण क्या था?' नागर ने सारी कहानी जान लेने की जिज्ञासा प्रकट की।

'मूल कारण यह था कि पुत्रबधू ने शर्माजी के घर मे पहले ही दिन अस्व-स्थता के साथ प्रवेश किया। वह सदा बीमार रहती। शर्माजी ने डाक्टरी उपचार कराने मे कभी कोई कमी नही आने दी। इधर जब शर्माजी की पत्नी कमल रोग से भयकर रूप मे बीमार पडी और डाक्टरी उपचार कराने मे उनकी शक्तियाँ जवाब देने लगी, तब उनकी पुत्रबधू को भी बुखार आने लगा। तीन दिन तक शर्माजी ने पुत्रबधू को किसी डाक्टर को नही दिख-लाया। कह दिया, पाँच-सात दिन मे बुखार का रूप निश्चित हो जाने पर किसी डाक्टर को दिखलाना ठीक होगा। बस, इस पर लडके का मिजाज

गर्म हो उठा। कह बैठा, माँ की बीमारी मे जितना खर्च हो चुका है, उसका एक तिहाई भी तो मेरी पत्नी पर नही किया गया। यदि डाक्टरी उपचार नही कराया जाता, तो मै बनारस ले जाऊँगा और वही उपचार कराऊँगा।'

'बात सचमुच तीखी और अशोभन थी।' नागर ने कहा—'अरे भाई, पत्नी तो दूसरी भी मिल सकती है, परन्तु माँ नही मिल सकती। इस लडके को ऐसी बात नही कहनी थी।'

'और ऐसी बात जब लडका कह बैठा, तब पिता होकर यदि शर्माजी का क्रोध भभक ही उठा हो, तो उसे असगत कहने की धृष्टता कौन कर सकता है ?' सिनहा साहब ने कुछ उत्तेजित होते हुए कहा—'फिर माँ की असाध्य बीमारी मे पत्नी को लेकर इस प्रकार भाग खडा होना भी तो पुत्र का साधारण विद्रोह नही है, नागरजी ! जिस साधनहीन पिता ने आँखो का तारा समझ, लडके को पाला-पोसा और शिक्षित किया हो, उसके लिए पुत्र का यह आचरण कितना कष्टप्रद होगा, इसका अनुमान हम लोग नही कर सकते। इतने पर भी शर्माजी कह रहे थे, इस लडके को विद्रोह ही करना था, तो दो वर्ष बाद एम० ए० हो जाने अथवा पी० सी० एस० मे सफल हो जाने पर ही करता।'

'वास्तव मे शर्माजी की आत्मीयता बेजोड माननी पडेगी।' नागर ने कहा—'तो अब साहबजादे एम० ए० नही पढ रहे है ?'

'न ! नौकरी प्राप्त करने और सपत्नीक रहने के फेर मे है।'

'तब यह लडका विवेकहीन है।'

'जो भी हो, इससे हमे कोई मतलब नही।' सिनहा साहब ने कहा—'मेरा मतलब केवल इतना है कि ऐसा पुत्र यदि भगवान् हमे देता, तो हम सौभाग्य-शाली रहते अथवा लता और रजनी जैसी पुत्री पाकर हम सौभाग्यशाली है ?'

'निस्सन्देह हम लोग सौभाग्यशाली है, सिनहा साहब !' नागर ने कुछ धीमे स्वर से कहा और दूसरा सिगरेट सुलगाया।

इस बीच रजनी पुन बैठक मे आ गई और उसके साथ ही महाराज चाय का ट्रे और नाश्ता लेकर सामने खडा हो गया।

रजनी ने अपने हाथो केटली से चाय का गर्म पानी, प्यालो मे उँडेला और दूध-चीनी मिलाकर चाय तैयार कर दी।

सबके साथ नागर ने चाय पीते हुए कहा—'तो यह कहना चाहिए कि शर्माजी ने अपने पुत्र की शादी करके स्वय अपनी बरबादी का अध्याय प्रारम्भ कर दिया!'

'यह कैसे कहा जा सकता है, भाई?' सिनहा साहब ने ओठो से चाय का प्याला हटाते हुए कहा—'मानव स्वय कर ही क्या सकता है? ग्रहो का फेर उसे लट्टू की तरह नचाता है। मानव तो एक माध्यम मात्र है!'

'आपका तर्क अकाट्य है, सिनहा साहब! लेकिन अदृष्ट के हाथ का खिलौना—यह मानव—माध्यम बनने की बात शायद ही कभी सोचता हो और ऐसी परिस्थितियो मे शायद ही वह मानसिक परिताप की ज्वालाओ से कभी बच सकता हो!' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'युग-युग से सँजोई गई आशाओ के विपरीत यदि मधुर आम फलने के समय किसी वृक्ष मे बबूल के तीखे काँटे फूट निकले, तो उस वृक्ष को रोपनेवाले की सारी आशाओ का महल सहसा ध्वस्त हो जाता है।'

'बेचारे शर्माजी की आजकल यही दशा है, नागरजी!' सिनहा साहब ने अपना एक हाथ सिर के बालो पर फेरते हुए कहा—'इस पुत्र पर उनके जीवन की सारी आशाएँ केन्द्रित थी। लेकिन हवा के एक ही विकट झोके ने—आँधी के एक ही झटके ने—उनका जीवन कुछ-का कुछ कर डाला। उनकी बातो से विराग टपकने लगा है। उनकी मुद्रा पर गहन निराशा को रेखाएँ ताण्डव करती दीखने लगी है। इस ससार से उन्हे घृणा होने लगी है। यो उनकी अवस्था अभी केवल चालीस को ही पार कर सकी है, किन्तु पचास से कम के नही दीखते।'

'अवस्था की छाप परिस्थितियो के अनुसार ही मानव पर पडती है ।' नागर ने मेज पर रक्खे पान के बीडो मे से दो बीडे उठाए और सुर्त्ती के साथ मुह मे उन्हे दबाते हुए कहा—'यो चालीस वर्ष का जीवन ऐसा नही, जिसे बुढापे की सज्ञा दी जा सके, परन्तु शर्माजी के साथ यह बात लागू नही होती। इसके दो कारण प्रतीत होते है । एक तो जैसा आपने स्वय अभी-अभी मुझे बतलाया है कि जब से उन्होने होश सँभाला है, अब तक सघर्षो का वह निरन्तर सामना किए जा रहे है। दूसरे, वे है बहुत बडे स्वाभि ानी ' तनिक-तनिक-सी बात को जो व्यक्ति अपने लिए अपमानजनक समझ बैठे, उसे बुढापा यदि जल्द घेर ले, तो कोई आश्चर्यजनक बात नही है। फिर, हमारे देश के हिन्दी पत्रकारो की दयनीय परिस्थितियाँ तो अब तक ऐसी है कि उन्हे दिन-रात बुरी तरह पिसना पडता है।'

'हाँ, भाई ! शर्माजी को सचमुच विषम परिस्थितियो मे जीवन बिताना पड रहा है !' सिनहा साहब ने कहा —'यही कारण है कि पुत्र-विद्रोह की आँधी मे उनका अस्तित्त्व उडते पत्ते की भाँति विचलित हो उठा है। लेकिन होनहार बडी प्रबल होती है, नागरजी ! उसे कोई मिटा नही सकता।'

'जो भी हो, मुझे आज इस सवाद से बडा धक्का लगा, सिनहा साहब ! अच्छा , अब रात काफी भीग चुकी है, मै चलूँगा ।' और अभिवादन कर न गर ने सिनहा साहब से बिदा ली।

—१८—

घर पहुचकर निर्मल नागर ने देखा, उनकी पत्नी—नलिनी—अब तक जाग रही है। रात काफी भीग चुकी थी, इसलिए नौकर अपने घर जा चुका था। दिन-भर नौकरी करने के बाद छुट्टी पाकर मानव आपने बाल-बच्चो के साथ दो घडी चैन से बैठना चाहता है। साधारण नौकर हो या असाधारण, चपरासी हो या क्लर्क , कलक्टर हो या गवर्नर—प्रत्येक मानव मे अपने स्त्री-बच्चो से हिल-मिलकर बात करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति पाई जाती है। ऐमी दशा मे नागर का नौकर भी अपने घर जा चुका है, तो इसमे आश्चर्य ही क्या ?

परन्तु आज यह देख, नागर को सचमुच आश्चर्य हुआ है। अभी-अभी सिनहा साहब के घर, नागर ने देवदत्तजी शर्मा के पुत्र-विद्रोह की जो कहानी सुनी है, उसे सुनकर सिनहा साहब से उन्होने चाहे जो कह दिया हो, परन्तु भीतर-ही-भीतर उनका अन्तस्तल हिल चुका है। जिन स्त्री-बच्चो के लिए मानव इतनी माया-म ता से भरा रहता है, वे भी पराए बनकर मानव को मर्मान्तिक पीडा पहुँचाने मे कुछ उठा नही रखते। आज कोई शर्माजी से जाकर पूछे कि उनके पुत्र ने ही उनके अन्तस्तल मे कैसी आग लगा दी है ! फिर पत्नी या पुत्र के लिए मानव की यह माया-ममता निरी मूर्खता नही तो क्या है ?

नलिनी के एक हाथ मे एक उपन्यास अब तक दबा हुआ था, जो इस बात का प्रमाण था कि नागर की प्रतीक्षा मे समय बिताने के लिए उपन्यास के कथा-नक से वह अपना मनोरजन कर रही थी। लेकिन कौन कह सकता है कि उपन्यास के जिस कथानक से नलिनी अपना मनोरजन कर रही है, उसकी पृष्ठभूमि शर्मा-जी जैसे किसी उपन्यासकार की आपबीती घटनाओ से ही निर्मित हुई हो !

नलिनी चुपचाप नागर की ओर देख रही थी। कदाचित् उसे भी आज नागर के इस अनपेक्षित मौन पर गहरा आश्चर्य हो रहा था। शायद वह सोच रही थी कि इस मनोदशा के बीच किसी सभापण का सूत्रपात कैसे किया जाए।

नागर अपने कपडे बदल रहे थे। सदा की तरह आज वह मुखर नही थे। शर्माजी के पुत्र-विद्रोह की कहानी—नही, सच्ची घटना—ने उनकी वाचालता पर आज शायद तुषारपात कर दिया था।

'क्या आज किसी से कही उलझ बैठे आप?' नलिनी ने नागर की ओर ध्यानपूर्वक दृष्टि गडाए पूछा।

'किसी से कभी उलझता हू नलिनी, जो तुम ऐसा कह रही हो?' नागर ने एक कोच पर बैठते हुए कहा।

'तब इस प्रकार मौन क्यो है?' नलिनी ने भी उनके ही निकट कोच पर बैठते हुए दूसरा प्रश्न किया।

'लता सो गई?' नागर ने नलिनी के प्रश्न का उत्तर न देते हुए पूछा। शायद उनका मतलब था कि लता न सो चुकी हो, तो नलिनी का उनके साथ एक ही कोच पर इतने निकट बैठना ठीक नही।

'लता न सो चुकी होती, तो क्या मै इस प्रकार ।' कहते-कहते नलिनी मुसकरा उठी और नीची दृष्टि कर चुप रह गई।

नागर के मन मे भीतर-ही-भीतर जो बात उठी थी, उसका नलिनी से यह उत्तर पाकर वह स्तब्ध रह गए। अब उन्होने नलिनी के पहले प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—'आज मेरे मौन का एक गभीर कारण है, नलिनी!'

'वह क्या?' नलिनी अधीरता के साथ पूछ बैठी।

'तुम्हे सुनकर शायद प्रसन्नता न होगी।'

'मुझे प्रसन्नता हो या अप्रसन्नता, लेकिन आपका अवसाद तो हलका हो

जाएगा।' नलिनी ने तिरछी दृष्टि से नागर की ओर देखते हुए कह दिया।

'यह तुम कैसे कह सकती हो, नलिनी?' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'पता नही, मेरा अवसाद कम हो जाने की बात तुमने कैसे कह दी?'

'इसलिए कि आत्मा के अन्तराल मे व्याप्त अवसाद ठीक उमडने-घुमडने-वाले बा.लो की उमस-जैसा ही रहता है। उसके हलके होने की सभावना तभी रहती है, जब बादल बरस जाते है। जिस बात को लेकर आप भीतर-ही-भीतर घुट रहे है, उसे व्यक्त कर देने पर आपका अवसाद भी कुछ-न-कुछ हलका हो ही जायगा।'

'आज मै सिनहा साहब के यहाँ ऐसी बात सुनकर आ रहा हू, जिसने मेरे अन्तर का एक-एक तार झकझोर दिया है। लगता ह, तुम व्यर्थ ही कभी-कभी यह सोचकर परेशान रहती हो कि एक पुत्र. ।'

'बस भी कीजिए!' नलिनी ने बीच मे ही नागर के ओठो पर अपनी एक हथेली धरते हुए टोक दिया।

'मै कह रहा था न, कि तुम्हे मेरी बात सुनकर शायद प्रसन्नता न होगी।' नागर ने नलिनी की हथेली अपने दोनो हाथो मे सस्नेह दबाते—सहलाते हुए कहा।

'अच्छा, अब नही टोकूगी।' नलिनी ने अपनी हथेली छुडाते हुए कहा—'लीजिए, अब सुनाइए अपनी बात।'

'मै देखता हूँ, इस ससार मे सभी परेशान है, नलिनी! जिसके पुत्र नही है, वह सोचता है, एक पुत्र होता, तो जीवन सार्थक हो जाता। परन्तु जिसके पुत्र है, उसे ऐसे कटु अनुभव होते है कि वह सोचता है, पुत्र न होता, तो जीवन शान्ति से गुजरता'

'इस लम्बी-चौडी भूमिका के बाद यथार्थ बात भी सुनाएँगे या नही?' नलिनी ने कहा—'अच्छा हो कि भोजन करते-करते ही आप यह बात सुनाएँ। रात बहुत भीग चुकी है।'

'भोजन आज न कर सकूँगा, नलिनी!' नागर ने अपने पेट पर एक हाथ फेरते हुए कहा—'आज प्रफुल्लजी और सिनहा साहब के घर इतना नाश्ता कर चुका हूँ कि इस पेट मे तनिक भी गुजाइश नही। तुमने भोजन किया अथवा ?'

'मै कर चुकी हूँ। लता के आग्रह पर मुझे उसके साथ भोजन करना ही पडा। अच्छा, अब वह बात सुना दीजिए।'

'वह बात जिनकी है, उन्हे तुम भी जानती हो, नलिनी!' नागर ने सक्षेप मे शर्माजी की कहानी सुनाते हुए कहा—'पडित देवदत्त शर्मा का ज्येष्ठ पुत्र इस वर्ष प्रथम श्रेणी मे बी० ए० उत्तीर्ण हुआ है। परन्तु वह सपत्नीक अपने माता-पिता से पृथक् हो चुका है। कहाँ शर्माजी उसे एम० ए० तक पढाना चाहते थे और पी० सी० एस० की परीक्षा मे बैठाना चाहते थे, और कहाँ वह लडका अब एक साधारण-सी पत्रिका का सहायक सम्पादक है।'

'क्या कह रहे है आप यह?' नलिनी ने मानो आसमान से धरती पर गिरते हुए कहा—'वह लडका तो बडा सुशील और सीधा दीखता था।'

'यही तो आश्चर्य और दुख की बात है।' नागर ने कहा—'लेकिन हाथी के दाँत खाने के दूसरे और दिखलाने के दूसरे होते है न! तभी इस लडके ने उस समय विद्रोह किया, जब माँ-बाप को उसका पूरा-पूरा सहारा मिलना था।'

'मै समझती हूँ, यह सब नई बहू के कारण हुआ होगा।' नलिनी ने एक हाथ मटकाते हुए कहा—'वह बनारसी लडकी है। विवाह के बाद ही जब मै शर्माजी के घर एक दिन गई थी, मुझे उसके रगढग अच्छे नही मालूम हुए।'

'अच्छा, तो तुम बहुत पहले ही यह सब समझ चुकी थी?'

'नही जी!' नलिनी ने मुसकराते हुए कहा—'समझने की बात सच भी हो सकती है और झूठ भी। लेकिन आभास अच्छा नही मिला था।'

'वह क्या?'

'यह कि नल पर वह जाती थी, तो पीढे पर बैठे बिना हाथ-मुह नही धो सकती थी। चौके मे बैठती, तो सास भले ही धरती पर बैठी रहे, लेकिन बहूजी पीढे पर ही विराजती थी। सुनते है, वह पढी तो है सस्कृत, लेकिन फैशन करने मे अँगरेजी पढी-लिखी लडकियो को भी मात देना चाहती है। गालो पर पाउडर और नाखूनो पर लाल पालिश लगाती है। एक हाथ मे सदा रूमाल लिये रहती है। वाचाल इतनी कि पहले-पहल ससुराल मे आने पर पर भी इतना बोलती थी कि सुननेवाली स्त्रियाँ दाँतो-तले अँगुली दबा लेती थी। लेकिन यह सब उसने ठीक नही किया। वह चाहती, तो पथ-भ्रष्ट और कर्त्तव्यच्युत होनेवाले अपने पति को सहज ही सन्मार्ग पर ला सकती थी।'

'जो भी हो, शर्माजी का जहाँ तक सबध है, इस शादी के साथ ही उनकी बरबादी हो चुकी।' नागर ने गम्भीर होते हुए कहा—'आज मुझे विश्व-विद्यालयो की शिक्षा के प्रति बडा क्षोभ हो रहा है। फर्स्ट क्लास ग्रेजुएट होकर भी यदि शर्माजी का पुत्र पितृद्वेषी हो सकता है, माँ-बाप का असम्मान कर उनकी आत्मा पर हथौडो की चोट कर सकता है और उनकी सारी आशाओ का सुनहरा महल ध्वस्त कर सकता है, तब इस दुनिया मे किससे कर्त्तव्य-पालन की आशा की जाए ?'

'यह आशा उनसे की जा सकती है, जिनमे मानवता रहती है।' नलिनी ने कुछ क्षुब्ध होते हुए कहा—'परन्तु सभी लडको मे ऐसी पशुता नही पाई जाती। माँ-बाप की आत्मा को कष्ट पहुँचानेवाला पुत्र मानव नही, पशु है। सन्तान के लिए माँ-बाप क्या नही करते, क्या कष्ट नही भोगते ? कितनी ममता उनके हृदय मे हिलोरे लेती रहती है, इसे वह कृतघ्न पुत्र क्या समझ सकेगा, जिसमे पशुता की प्रबलता जाग उठी हो।'

एक क्षण रुककर नलिनी ने फिर कहा—'और शर्माजी से अधिक तरस तो मुझे उनकी पत्नी पर आता है, जो बेचारी यह आकाक्षा सँजोए बैठी थी कि हरीश जब पहले—पहल किसी नौकरी पर कही बाहर जाएगा, तो वह

अपनी पुत्रबधू को कभी अकेली न जाने देगी, स्वय उसके साथ जाएँगी और दो-एक महीने साथ रहकर उसकी गृहस्थी को व्यवस्थित करके ही लौटेगी।'

कुछ क्षण रात्रि की उनीदी घडियो मे दोनो पति-पत्नी चुपचाप कोच पर बैठे रहे। शर्माजी पर जो बीत रही होगी, उसकी कल्पना-मात्र से नलिनी और निर्मल नागर आज इतने परेशान हो उठे है कि नीद भी उनसे दूर भाग रही है।

इस निस्तब्धता को भग करते हुए नलिनी ने आग्रहपूर्वक कहा—'अच्छा, अब चलकर सो जाइए। इस ससार मे इतना दुख-दर्द और हाहाकार है कि सबके प्रति हम इस प्रकार तिल-तिलकर भस्म होने लगें, तो हमारा जीवन हमे ही भार हो उठे।'

'तुम ठीक कहती हो, नलिनी !' नागर ने एक लम्बी साँस छोडते हुए कहा—'इस ससार मे क्या गरीब, क्या अमीर, क्या पुरुष, क्या नारी—सभी के हृदय मे किसी-न-किसी हाहाकार की विनाशकारी लपटो का अग्निकुण्ड धधकता रहता है। इसे शान्त करने के लिए—इस अग्निकुण्ड को ठण्ढा करने के लिए—मानव के आँसुओ की गगा-यमुना भी पर्याप्त नही होती। यह बात दूसरी है कि आँसुओ की यह धारा सभी को और सदा नही दिखलाई पडती। ऐसी दशा में हमारा इतना अधिक अभिभूत होना सचमुच ठीक नही। चलो, अब सो जाना ही ठीक होगा।'

-१९-

नलिनी के आग्रह पर निर्मल नागर बिस्तर पर जाकर लेट तो गए, परन्तु उनकी आँखो मे नीद नही थी। नागर ने कुछ ऐसा सवेदनशील हृदय पाया है कि दूसरो की पीडा देख, वह विचलित हो उठते है। शर्माजी के पुत्र-विद्रोह की कहानी रह-रहकर उनके अन्तराल मे हू-हू कर उठती है। शर्माजी के अन्तस्तल मे आज जो हाहाकार प्रलय मचा रहा होगा, उसकी कल्पना-मात्र से नागर इस समय बेचैन हो उठे।

शयन-कक्ष के वातायन से नीलाकाश का जो भाग दीख रहा था, उसमे तारो की चमक बडी लुभावनी प्रतीत हो रही थी। नागर को लगा, नित्य ही रात की सूनी घडियो मे ये तारे इसी तरह चमचमाते रहते है और मानव-मात्र को मुग्ध किए रहते है। परन्तु इन तारो के सौन्दर्य से अपनी आँखो को शीतल और अपने मन को आह्लादित करनेवाला मानव इन्हे कभी प्राप्त नही कर सकता—इनका कभी स्पर्श नही कर सकता। यह सब तो दूर से देखकर ही तृप्त होने की माया है। माया? हाँ, माया नही तो क्या है? और, पडित देवदत्त का पुत्र भी तो ऐसी ही माया सिद्ध हुआ न!

शर्माजी ने कितनी आशाओं का केन्द्र मानकर अपने पुत्र हरीश को पाला-पोसा, और अपना पेट काटकर उसे शिक्षा दिलाई। पुत्र की प्रत्येक अभिलाषा को पूरा करने मे उन्होने अपनी शक्ति से बाहर व्यय किया। हरीश की वेश-भूषा देखकर कोई यह कल्पना भी नही कर सकता कि उसके पिता की आय बहुत ही सीमित है—इतनी सीमित कि उससे उनके परिवार का भरण-

पोषण भी बखूबी नही हो सकता। परन्तु शर्माजी घोर कर्मठ है, अमित परि-श्रमी है। घर मे वह कभी आराम करते नही देखे गए। मिलने-जुलनेवाले जब कभी उनके घर गए, उन्हे सदा अध्ययन करते अथवा कुछ-न-कुछ लिखते ही पाया। दर्जनो पुस्तके लिखकर प्रकाशको को उन्होने लुटा दी। हॉ, लुटा देना ही कहा जाएगा। जब कभी कोई आवश्यकता उनके सामने मुँह फैलाकर आ खडी हुई, उन्होने अपनी पुस्तक के सर्वाधिकार किसी भी प्रका-शक को बेचकर अपना निर्वाह किया और अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रक्खा। यह बात नही कि शर्माजी यह न जानते हो कि हमारे देश मे अधिकाश प्रकाशक, हिन्दी-लेखको को कम-से-कम रुपया देकर, उनका अधिक-से-अधिक शोषण करते है। परन्तु शर्माजी ने अपने मित्रो से ऐसे प्रसगो पर बहुधा यही कहा है कि ईश्वर ने चाहा , तो मेरा बडा पुत्र हरीश शीघ्र ही एम० ए० हो जाएगा और पी० सी० एस० मे सफल हो गया, तो मेरी सारी दरिद्रता दूर कर देगा—मेरे बुढापे का सहारा बन जाएगा । यही कारण है कि मै अपनी सारी शक्तियॉ लगाकर उसे पढाने-लिखाने मे कोई कमी नही करना चाहता, और इन प्रकाशको के शोषण से तनिक भी नही घबराता।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है, ईश्वर को यह स्वीकार नही था। शर्माजी की भाग्य-रेखा तो उसी समय ईश्वर ने अकित की होगी, जब वह इस ससार मे जन्म ले रहे होगे। उस भाग्य-रेखा मे ईश्वर भी अब क्यो कोई उलटफेर करने लगा ? सम्भवत वह अब ऐसा कर नही सकता। इस विडम्बना का अनुभव स्वय शर्माजी अपने जीवन मे रात-दिन कर रहे है ! शर्माजी बहुधा कहने लगते है, जब कभी उनकी पत्रिका मे, उन्ही की किसी भूल से कोई त्रुटि छप जाती ह, तब उसका सुधार करना स्वय शर्माजी के लिए असम्भव हो जाता है।

शर्माजी के लाख चाहने पर भी उनका बडा लडका उनके लिए बुढापे का सहारा न बन सका। वह तो हाथी के दॉत का ही प्रतीक रहा। केवल देखने-सुनने के लिए उनका पुत्र है। वह स्वय अपना सहारा नही

बन सका, तो माँ-बाप का सहारा क्या खाक बनेगा! जब तक एम० ए० नही हो जाता, तब तक साधारणत वह अच्छी सरकारी नौकरी नही पा सकता। परन्तु हरीश की बुद्धि पर तो जैसे किसी ने जादू कर दिया है! उसने एम० ए० न पढकर एक मासिक पत्रिका मे महायक सम्पादक होकर जिन्दगी बिताने का जो मार्ग अपनाया है, वह उस जैसे प्रतिभा-सम्पन्न ग्रेजुएट के लिए सर्वथा निन्द्य कहा जाएगा। फिर ग्रेजुएट होते ही माता-पिता से पृथक् हो जाना तो उसकी घोर कृतघ्नता है।

हरीश को अपने माता-पिता से पृथक् ही होना था, तो शर्माजी की इच्छा का ध्यान रखते हुए एम० ए० करके और पी० सी० एस० मे उत्तीर्ण होकर भी यह सब कर सकता था। आज के युग मे सभी लडके माँ-बाप के साथ रहते कहाँ है? परन्तु पृथक् रहकर भी लडका अपने माँ-बाप को सन्तुष्ट रख सकता है और उन्हे पूरी-पूरी अथवा सभाव्य सहायता देकर उनके ऋण से किसी सीमा तक उऋण होने की भरसक चेष्टा कर सकता है। जो पुत्र अपने माता-पिता के बुढापे का सहारा न हो सका और उनकी इच्छाओ तथा कठिनाइयो का भी ध्यान न रख सका, उसका जीवित रहना न रहना बराबर है।

लेकिन हरीश ने तो अपने पिता का असम्मान भी किया है, उनकी इच्छाओ के सर्वथा विपरीत कदम बढाया है। सुनते है, हरीश की प्रत्येक बात मे अशिष्टता और कडवाहट भरी रहती है। जो हरीश अपने पिता से भी मधुरता और शिष्टता के साथ बात नही कर सकता; उनकी सेवा-शुश्रूषा करना तो दूर की बात, उन्हे कभी कोई सन्तोष नही दे सकता, उसकी उच्च शिक्षा पर एक बार नही, हजार बार लानत है।

कहते है, पिता के दिवगत हो जाने पर पुत्र द्वारा ही उसकी अन्त्येष्टि और उसके श्राद्ध-तर्पण आदि का जो विधान हमारी भारतीय सस्कृति के अन्तर्गत है, उससे पिता की दिवगत आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलती है। परन्तु जो पुत्र अपने जीवित पिता को ही शान्ति न दे सके, सन्तुष्ट और

प्रसन्न न रख सके, उसे पुत्र नही, पशु कहना ही अधिक उपयुक्त है ।

नागर के अन्तर्मन मे प्राचीन काल के गुरुकुलो का एक चित्र साकार हो उठा । गुरुकुल के स्नातको मे ऐसी बर्बरता नही पाई जाती थी, जैसी आजकल के विश्वविद्यालयो के डिग्रीधारी स्नातको मे। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के प्रति नागर का मन एक गहरे क्षोभ से भर उठा।

नागर को स्मरण आया, त्रेतायुग के श्रवणकुमार-जैसे मातृ-पितृ-भक्त पुत्र का। उसने अपने नेत्रहीन माता-पिता को एक कॉवर मे बैठाकर और उस कॉवर को स्वय अपने कन्धो पर रखकर उन्हे तीर्थयात्रा कराई और इसी सिलसिले मे उसे अपने प्राण तक दे देने पडे।

महाभारत-काल के उन भीष्म पितामह का चित्र भी नागर की ऑखो के सामने झूल उठा, जिन्होने अपने पिता की प्रसन्नता के लिए, उनकी इच्छा-पूर्त्ति के लिए स्वय आजीवन अविवाहित रहने का कठोर प्रण किया और उसका निर्वाह भी किया। परन्तु एक यह हरीश है, जिसने अपने उस पिता की इच्छाओ का भी कोई ध्यान न रक्खा, जिसने अपना सर्वस्व उसके निर्माण पर न्योछावर कर दिया और आज उसी के कारण सर्वथा अकिंचन हो गया।

कहाँ उस श्रवणकुमार का आदर्श है, जिसके माता-पिता नेत्रहीन होने के कारण अपने पुत्र के लिए किसी प्रकार उपयोगी नही थे, फिर भी पुत्र ने उनकी सेवा-शुश्रूषा और इच्छा-पूर्त्ति के लिए अपने प्राण तक होम दिये। लेकिन इस हरीश का पशुत्त्व देखो कि जिस पिता के अर्थोपार्जन और लाड-दुलार की छाया मे उसका निर्माण हुआ और विकास हो रहा था, उसी पिता की छाया से वह दूर जा खडा हुआ !

कहॉ भीष्म पितामह का वह त्याग कि पिता की इच्छा-पूर्त्ति के लिए उन्होने आजीवन अविवाहित रहने और ससार के सभी सुखो को ठोकर लगाकर जीवन बिता देने का ऐसा उदाहरण उपस्थित किया कि हजारो वर्ष बीत जाने

पर भी अब तक उनका जय-जयकार होता है, और कहाँ इस घोर स्वार्थी हरीश की यह हरकतें कि नवविवाहिता पत्नी के कारण, माँ की असाध्य बीमारी और पिता की जर्जरता का भी उसे कोई ध्यान नही। विश्वविद्यालय का स्नातक होकर ही शायद वह इतना निर्लज्ज हो चुका है कि उसे अपनी लोकनिन्दा का भी कोई ध्यान नही है।

यह बात नही कि शर्माजी के परिचितो और सबधियो ने इस हरीश को भली भाँति समझाया न हो, किन्तु किसी की सीख का उस पर कोई प्रभाव नही पडा। नागर को लगा कि ऐसी दशा मे यही मानना होगा कि यह हरीश स्नातक होने पर भी वज्र मूर्ख और घोर स्वार्थी है।

नागर यही सब सोच रहे थे कि घर मे नीचे के हिस्से मे सहसा बिल्लियो की गुर्राहट सुनाई पडी। दो बिल्लियाँ जोरो से लड रही थी—शायद एक दूसरी को चीर-फाडकर यमलोक पहुँचा देने की तैयारी कर रही थी।

नागर को लगा कि ये बिल्लियाँ जैसी बर्बर और खूँख्वार है, आज का उच्च शिक्षाप्राप्त मानव भी इन-जैसा ही बर्बर है। मानव की बर्बरता पर कृत्रिम शिष्टाचार और शिक्षा का एक झीना-सा आवरण-मात्र पड गया है, जो तनिक-सा झटका लगते ही फट जाता है और मानव की बर्बरता की वास्तविक बीभत्स झाँकी दिखला देता है।

नागर का मस्तिष्क भन्ना उठा। जब उच्च शिक्षा से भी मानव की बर्बरता मिटाई नही जा सकती, तब उसे किस प्रकार बनाया-सुधारा जाए?

हरीश की अशिष्टता की जो कहानी नागर ने अब तक सुनी है, उससे उनका अन्तस्तल हिल उठा है। पता नही, आज की रात उन्हे नीद आ सकेगी या नही!

दूर किसी घण्टाघर की घडी ने जोरो से टन-टन करके तीन बजने की सूचना दी। नागर ने बेचैनी का अनुभव करते हुए करवट बदली। तभी हरीश के पिता—शर्माजी—का वह चित्र उनकी आँखो के सामने नाच उठा, जो

अभी दो-एक दिन पहले ही नागर ने दूर से अनायास ही देख लिया था।

शर्माजी एक हाथ मे गान्धी झोला लटकाए सम्भवत अपने कार्यालय से घर वापस जा रहे थे और नागर एक ताँगे पर बैठे गान्धी महिला-विद्यालय की ओर जा रहे थे। शर्माजी ने नागर को नही देखा था। नीची दृष्टि किए वह धीरे-धीरे अपने पथ पर बढे जा रहे थे। परन्तु नागर ने उन्हे ध्यानपूर्वक देख लिया था।

शर्माजी का शरीर सूखकर आधा रह गया है। उनके गालो पर दुर्दिन के प्रहारो की छाप, गड्ढो का रूप धारण कर चुकी है। परेशानी और बेचैनी उनकी मुद्रा पर अकित हो चुकी है। आखिर क्यो न हो? अपना सर्वस्व लगाकर उन्होने अपने जिस बडे पुत्र को पाल-पोसकर बडा किया, अपना पेट काटकर जिसे बी० ए० तक पढाया-लिखाया और कर्ज लेकर भी जिस का विवाह कर अपने सारे कर्तव्यो को पूरा किया, उसी पुत्र ने उनकी सारी आशाओ पर अचानक ही तुषारपात कर दिया! इस हरीश को अपने माता-पिता से पृथक् होते शर्म भी न आई! छि!

नागर ने बिस्तर से उठकर एक गिलास ठण्डा पानी पिया और फिर जाकर वह लेट रहे। परन्तु हरीश की उधेडबुन मे कब तक वह करवटे बदलते रहे और कब उनकी आँख लग गई, इसका उन्हें स्वय स्मरण नही।

पत्रकार साधारणत भावुक नही होता। परन्तु पण्डित देवदत्त शर्मा पत्रकार होने के साथ ही साथ कवि, कथाकार और उपन्यासकार भी है, अत स्वभावत गहरी भावुकता उनके व्यक्तित्त्व मे ओतप्रोत है। यह भावुकता उन्हे कभी निश्चिन्त न रहने देती। कभी दूसरो की चिन्ता-व्यथा से वह अभिभूत रहते, तो कभी अपनी ही पारिवारिक परेशानियो से पीडित रहते। इधर जब से उनका ज्येष्ठ पुत्र हरीश विद्रोह का झण्डा ऊचा कर उनसे पृथक् रहने लगा, तब से उनकी मानसिक स्थिति एकदम असतुलित हो उठी है।

देवदत्त का विचार था कि हरीश एम० ए० होकर डाक्टरेट लेकर कही प्रोफे-सर हो जाएगा अथवा पी० सी० एस० मे उत्तीर्ण होकर डिप्टी कलेक्टर हो जाएगा, तो वह इस पत्रकारिता से अवकाश-ग्रहण कर लेगे और घर बैठे ही कुछ-न-कुछ बराबर लिखते रहेगे। पत्रकारिता मे रहते हुए उनका लेखन-कार्य निरन्तर रूप से हो नही पाता। इस लेखन-कार्य से न केवल उनकी मानसिक तृप्ति होगी, प्रत्युत कुछ अर्थोपार्जन भी वह कर सकेगे। हरीश पर वह अपना भार नही डालना चाहेगे। कम-से-कम अपने ऊपर होनेवाला खर्च वह स्वय जुटाते रहेगे। परन्तु इन सारी आशाओ के सुनहरे तार इस हरीश ने एक ही झटके मे ऐसे तोड दिए कि उतरती उम्र मे देवदत्त का अन्तस्तल अप्रत्याशित रूप से अस्तव्यस्त हो उठा।

हरीश के पृथक्करण से अब देवदत्त को ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो स्वय उनका पुनर्जन्म हुआ हो। पुनर्जन्म इस अर्थ मे कि उन्हे अपनी पुत्री लज्जा

को सुखी रखने के लिए उसके विवाह मे खासी बडी रकम खर्च करनी पडेगी और छोटे बच्चे शम्भु को सुखी रखने के लिए उसे थोडा-बहुत पढाने-लिखाने के साथ ही किसी ऐसे रोजगार की व्यवस्था करनी होगी, जिसके सहारे वह चैन से अपना जीवन बिता सके । अधिक पढाने-लिखाने मे अब देवदत्त का विश्वास नही रहा । हरीश को बी० ए० तक पढाने का जो फल उन्हे मिला है, वह इतना कडवा है कि जन्म-जन्मान्तर तक उसे वह भूल न सकेगे। यदि हरीश अपने कर्त्तव्यो का ध्यान रखता और अपने पिता को इन चिन्ताओ से मुक्त रख सकता, तो देवदत्त का जीवन विषण्ता और उदासीनता की कहानी बनकर न रह जाता। किन्तु हरीश पर केन्द्रित सारी आशाएँ एक मृगजल बनकर रह गई । यही कारण है कि देवदत्त अपनी इस ढलती उम्र मे भी अपने पुनर्जन्म का अनुभव करने लगे है।

उस दिन आचार्या सुमित्रा 'त्रिवेणी' कार्यालय मे देवदत्तजी से भेट करने आई थी। उनका लेख देवदत्तजी ने 'त्रिवेणी' मे प्रकाशित कर दिया था। सुमित्राजी उसी के सम्बन्ध मे आभार-प्रदर्शन करने आई थी। कितनी शालीनता है इस सुमित्रा मे! और दूसरो के प्रति जहाँ इतनी शालीनता है, वही अपनो के प्रति अगाध आत्मीयता और ममता भी है उस नारी मे। सम्भाषण के सिलसिले मे देवदत्त ने जाना कि सुमित्रा अपने दिवगत पिता के प्रति कितनी श्रद्धा सँजोए बैठी है! उनकी स्मृति मे सुमित्रा की दोनो आँखे सहसा गीली हो गई थी। पिता को खोकर वह कितनी दुखी है!

लेकिन यह हरीश है कि अपने पिता—देवदत्त—की छाया मे भी नही रहना चाहता। पिता के साथ रहने मे शायद उसे कष्ट होता है! देवदत्त को लगा कि ऐसा करके हरीश उन्हे ससार की नजरो मे नीचा गिराने की कुत्सित चेष्टा कर रहा है। जिन्हे सारी कहानी ज्ञात नही, उन्हे यह समझने का मौका दे रहा है कि पिता उसे घोर कष्ट और यन्त्रणा देते होगे, अन्यथा इस प्रकार पृथक् रहने की आवश्यकता ही पुत्र को क्यो पडती! परन्तु यह वास्तविकता कोई नही जानता कि हरीश अपनी हरकतो से देवदत्त को असह्य कष्ट

पहुँचाने मे ही गहरे सन्तोष का अनुभव कर रहा है। प्रत्येक मानव मे कुछ-न-कुछ पशुत्त्व सन्निहित रहता है, किन्तु विवेक के अकुश से यह पशुता दबी रहती है। परन्तु हरीश की पशुता इतनी प्रबल हो उठी है कि उसका विवेक तनिक भी काम नही कर रहा है।

जो भी हो, माता-पिता की आत्मा को, उनके समस्त त्याग और बलिदान के बावजूद भी घोर क्लेश पहुँचाने का परिणाम कभी सुखद नही हो सकता। माता-पिता से पृथक्करण के पश्चात् केवल छ महीने का इतिहास इसका साक्षी है कि हरीश की इन हरकतो का समर्थन ईश्वर भी नही कर रहा है।

जिस हरीश को देवदत्त डिप्टी कलैक्टर अथवा प्रोफेसर के रूप मे सुखी देखना चाहते थे, वही हरीश अपनी हरकतो के फलस्वरूप बी० ए० के पश्चात् विश्वविद्यालय की पढाई छोडकर एक साधारण-सी मासिक पत्रिका का सहायक सम्पादक होकर रह गया। देवदत्त ने अपना सारा जीवन सम्पादक रहकर बिता दिया; परन्तु उनकी आर्थिक स्थिति कभी सन्तोषजनक नही रही। उन्होने अनेक बार प्रसग छिडने पर हरीश को हिन्दी पत्रकारिता की विडम्बनाएँ समझाते हुए आगाह किया था कि वह भूलकर भी हिन्दी पत्रकारिता को अर्थोपार्जन का माध्यम न बनाये। लेकिन हरीश है कि इसी हिन्दी पत्रकारिता को अपना बैठा। शायद उसकी परिस्थितियो ने, जो स्वय हरीश की हठधर्मी से उत्पन्न हो गई थी, उसे बाध्य कर दिया। यदि वह पितृद्रोही होकर अपने परिवार से पृथक् न होता, तो आज उसे साधारण-सी मासिक पत्रिका के सहायक सम्पादक के रूप मे अपना जीवन नष्ट न करना पडता। प्रथम श्रेणी का स्नातक होकर यदि किसी दैनिक पत्र मे सहायक सम्पादक होता, तो भी उसकी भावी उन्नति का मार्ग प्रशस्त रहता। किन्तु जिस साधारण-सी मासिक पत्रिका का वह सहायक सम्पादक है, वहाँ तो मानो उसकी उन्नति का मार्ग सदा के लिए बन्द ही हो चुका है।

इसे बुद्धि का और ग्रहो का फेर ही कहना होगा कि सहायक सम्पादक रहकर भी हरीश अपने-आपको परम गौरवान्वित समझ रहा है। परिस्थि-

तियो के अनुकूल स्वय को ढालना और सतुष्ट रहना बुरा नही है, परन्तु निर्माण-काल मे यह सन्तोष सदा विषाक्त सिद्ध होता है। किसी ने कहा भी है—'राजा और विद्यार्थी, अगर करे सन्तोष, निश्चय ही दिन-दिन घटे, धन विद्या का कोष।'

अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ हरीश एक तग और गन्दे-से कमरे मे जीवन बिता रहा है। एक ही शहर और एक ही मुहल्ले मे रहते हुए भी ये पिता-पुत्र उसी तरह एक-दूसरे से सदा दूर रहते है, जिस तरह एक ही नदी के दो किनारे। लेकिन देवदत्त का पितृ-हृदय अपने बागी और विद्रोही पुत्र की प्रत्येक गतिविधि का पता लगाए रहता था। सुख-दुख, आशा-निराशा और उत्थान-पतन के इतिहास से भरे हुए लम्बे-लम्बे बाईस वर्षो तक जिस पुत्र को उन्होने कभी आँखो से ओझल नही होने दिया, उसके पृथक्करण पर उनकी आत्मा को कितना क्लेश पहुँचा, इसका अनुमान तरुणाई के उन्माद से उन्मत्त हरीश कभी कर ही नही सकता।

देवदत्त को उन दिनो की स्मृतियाँ भुलाए नही भूलती, जब हरीश को गोद मे लेकर वह नित्य चहलकदमी करने जाया करते। कार्यालय से जब देवदत्त के वापस आने का समय होता, तब यह हरीश भी दरवाजे पर उनकी अथक प्रतीक्षा किया करता। देवदत्त आते ही इसे गोद मे ले लेते और अपने जीवन-सघर्षो की सारी पीडा इसके साथ बाते करते हुए भूल जाया करते। प्रथम बार जब हरीश को पाठशाला मे भेजा गया, तब देवदत्त की आँखे गीली हो उठी थी, मानो चन्द घण्टो का पुत्र-बिछोह भी उन्हे असह्य था। किन्तु कौन जानता था कि हरीश तरुण होकर, ग्रेजुएट होकर और विवाहित होकर देवदत्त के लिए बिच्छू का डक बन जाएगा।

एक दिन देवदत्त को पता चला कि उनकी पुत्रबधू गर्भवती है। मन-ही-मन उन्हे एक अव्यक्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ। भले ही उनका पुत्र हरीश उनसे पृथक् रहता है, किन्तु पोत्र होगा, तो प्रपिता होने का गौरव और सतोष तो देवदत्त को प्राप्त होगा ही। परन्तु देवदत्त की भाग्य-रेखा कुछ ऐसी

है कि किसी प्रकार के सन्तोष और सुख का अनुभव वह कर नही सकते। जब हरीश से उन्हे कोई सुख-सन्तोष नही हो सका, तब उससे सम्बद्ध किसी भी सुख-सन्तोष की आशा पूरी कैसे होती ?

कुछ ही दिनो बाद देवदत्त ने सुना कि पुत्रबधू काफी बीमार रहने लगी है। हरीश जी खोलकर इलाज करा रहा था, किन्तु मर्ज बढता ही गया, ज्यो-ज्यो दवा की। माता-पिता से विद्रोह ठान लेनेवाले हरीश को इस सकट-काल मे अपनी सास को बुला लेना पडा। परन्तु सास के आने पर एक सप्ताह बीतते-न-बीतते हरीश की पत्नी की हालत इतनी गिर गई कि एक दिन उसे स्थानीय महिला-अस्पताल मे भरती करा देना पडा।

हरीश के निन्द्य और असन्तोषजनक व्यवहार से यद्यपि देवदत्त बहुत ही क्षुब्ध थे, फिर भी पुत्रबधू की असाध्यावस्था का समाचार सुनकर वह अपना सारा सम्मान भूलकर भी सपरिवार महिला-अस्पताल दौडे गए।

जनवरी का महीना था। मकर सक्रान्ति के पर्व की तीर की तरह ठण्ढी हवा के झोको का सामना करते हुए, देवदत्त दिन-भर भूखे-प्यासे और चिन्तित महिला-अस्पताल के फाटक पर सपरिवार खडे रहे। केवल देवदत्त की पत्नी मीरादेवी भीतर पुत्रबधू की रोग-शय्या के निकट रह सकी। बीच-बीच मे पुत्री लज्जा को भीतर भेजकर देवदत्त पुत्रबधू की गिरती दशा मे सुधार होने-न-होने की बात पूछ लेते थे।

धीरे-धीरे सारा दिन सरक गया और सन्ध्या का झुटपुटा होने लगा। सामने के राजपथ की चहल-पहल अपेक्षाकृत शान्त होने लगी। वातावरण मे एक भयावह सन्नाटा व्याप्त होने लगा। किन्तु तीर की तरह चलनेवाली ठण्ढी हवा के झोको की गति मे कोई अन्तर नही आया। देवदत्त की पुत्रबधू की गिरती दशा मे भी कोई सुधार नही हुआ। उसकी दशा उत्तरोत्तर गिरती जा रही थी।

देवदत्त ने जब सुना कि पुत्रबधू के गले मे कफ की घडघडाहट बहुत बढ गई है और आक्सिजन भी दी जाने लगी है, तब उन्हे लगा कि दिन के जगमग प्रकाश को जिस प्रकार सन्ध्या का झुटपुटा धूमिल कर बैठा है और अब

शीघ्र ही रात्रि का कुहू अन्धकार अपना काला अचल फैलाने की तैयारी कर रहा है, उसी प्रकार हरीश के सुखद विवाहित जीवन-नाटक का पटाक्षेप होने मे भी अब अधिक विलम्ब नही है। जिस पुत्रबधू को लेकर यह हरीश इतना इतराया, पथभ्रष्ट और कर्त्तव्यच्युत होकर सारी दुनिया की नजरो मे गिर गया और तरह-तरह की आलोचनाओ का लक्ष्य बना, वही पुत्रबधू अब सदा के लिए उसे छोड जाने की घडियाँ गिन रही है ।

महिला-अस्पताल के जिन कठोर नियमो के कारण देवदत्त दिन-भर अपने बच्चो के साथ फाटक पर खडे रहे, उनकी भयकरता रात्रि का आगमन निकट देख उन्हे बहुत क्षुब्ध कर बैठी। उन्होने पुन लज्जा को भीतर भेजकर अपनी पत्नी को फाटक पर बुलवाया और कहा—'अब रात हो रही है। इन बच्चो के साथ इस फाटक पर रात मे भला, कब तक मै खडा रहूँगा ? हम लोग दिन-भर के भूखे-प्यासे है और रात मे भी भूख-प्यास को पास न फटकने देगे; किन्त इन बच्चो को तो उपवास कराना उचित नही। तुम जाकर हरीश से कह आओ कि अब हम लोग घर जा रहे है। सबको घर भेजकर, हरीश चाहे, तो मै फिर यहाँ आ जाऊँगा।'

मीरादेवी दस मिनट मे ही हरीश को सारी परिस्थिति समझाकर पुनः फाटक पर आ गई और एक रिक्शे पर देवदत्त सपरिवार अपने घर की ओर चल पडे।

रिक्शे पर ही मीरादेवी ने पुत्रबधू की गिरती दशा और बेहोशी आदि का दिन-भर का जो आँखो-देखा समाचार देवदत्त को सुनाया, उससे उनकी यह आशङ्का और प्रबल हो उठी कि अब पुत्रबधू की जीवन-लीला समाप्त होने मे अधिक विलम्ब नही है ।

घर पहुँचकर देवदत्त ने सबके साथ चाय पीकर नाश्ता किया और पत्नी से कहा—'अब मुझे फिर अस्पताल जाना चाहिए। क्या कह रहा था हरीश मेरे पुन. जाने के सबध मे ?'

'बिच्छू का स्वभाव डङ्क मारने का होता है न!' मीरादेवी ने कहा—

'हरीश ऐसी सकटापन्न घडियो मे भी इतनी तीखी बात करता है कि हृदय फट जाता है।'

'आखिर क्या कहा उसने ?' देवदत्त ने पूछा।

'यही कि दादा की इच्छा हो, तो आवे, अन्यथा तुम सबके मन की तो हो ही रही है।' मीरादेवी ने एक ठण्डी साँस छोडते हुए कहा—'यह सुनकर मैंने यही कहा कि हरीश, सकट की इन घडियो मे तुझे यह बात नही कहनी चाहिए। हम लोग आखिर तेरे माता-पिता है। हमने कभी तेरा अमगल नही मनाया। लेकिन मै जानती हू, तेरे सास-ससुर ने जिस प्रकार तेरे कान भर-भरकर तुझे हम लोगो से पृथक् कर दिया है, उसी प्रकार तेरी इन बातो मे जो उन्ही के स्वर गूँजे रहे है, वे पता नही क्या करनेवाले है। हम लोग यदि तेरा अमगल चाहते, तो तेरे निन्द्य व्यवहारो की असह्य चोटो की पीडा से कराहते रहने पर भी, आज यहाँ दिन भर भूखे-प्यासे हरगिज न खडे रहते।'

'तुमने उसे उचित उत्तर दिया है।' देवदत्त ने तिलमिलाते हुए कहा—'उसकी सास को मै बहुत शालीन समझता था, लेकिन हरीश के इस उत्तर मे उसकी सास का जो स्पष्ट स्वर है, वह निश्चय ही हलाहल है। ईश्वर सब देखता है। उसके दरबार मे देर हो सकती है, अन्धेर नही। जो हमारा अमगल मनाएगा, भगवान् स्वय उसे सबक देगे। हम अपने कर्त्तव्य से क्यो चूके ? अच्छा, मै फिर जा रहा हूँ। शायद उसे मेरी किसी सहायता की आवश्यकता आ पडे।' और हाथ-मुँह धोकर गरम कोट के भी ऊपर एक शाल ओढकर देवदत्त पुन महिला-अस्पताल की ओर एक रिक्शे पर चल पडे।

अस्पताल मे पहुँचकर देवदत्त ने वही देखा, जिसकी आशका उन्हे सन्ध्या से ही होने लगी थी। हरीश की पत्नी के प्राण-पछी उड चुके थे। उसका शव एक चादर से ढका हुआ पडा था। हरीश अपनी सास के साथ आँसुओ में डूबा हुआ वही बैठा था।

देवदत्त ने वहाँ पहुँचते ही हरीश को अपने वक्षस्थल से लगा लिया। स्वय आँसुओ मे डूबते हुए उन्होने कहा—'विधि-विधान पर मानव का कोई

—२१—

अभूतपूर्व प्रसन्नता के बीच आज सुमित्रा का दिन समाप्त हो गया। बहुत दिनो के बाद आन्तरिक आनन्द का अनुभव आज वह कर सकी। जब से अपने पिता को वह खो चुकी है, कदाचित् ऐसा आनन्द अब तक उससे कोसो दूर ही रहा। पिता को खोकर इस विशद् विश्व मे सुमित्रा अपने आपको सर्वथा अकिचन समझने लगी थी। परन्तु परसो प्रफुल्ल घोष से मिलकर उसे जो आत्मीयता और सहानुभूति प्राप्त हुई है, उसे सुमित्रा अपने लिए किसी वरदान से कम नही समझ रही है। हॉ, वरदान!

कितनी आत्मीयता और सहानुभूति थी प्रफुल्ल के इन शब्दो मे—'आपकी बातो से मै यह अच्छी तरह समझ चुका हूँ कि आप अपने पिताजी को खोकर स्वय को अकिचन अनुभव कर रही है, परन्तु इस भावना को धीरे-धीरे भूलने की चेष्टा आपको करनी होगी।'

प्रफुल्ल की यह बात सुन, सुमित्रा के मन-प्राणो मे उस समय जो अद्भुत-कम्पन होने लगा था, उसकी अनुभूति से वह गद्गद हो उठी थी। गद्गद हो उठने का कारण और कुछ नही, केवल यही था कि प्रफुल्ल ने सुमित्रा के मर्म को छू लिया था; उसकी वास्तविक व्यथा को समझ, सहानुभूति और आत्मी-यता का अमृत उँडेल दिया था। प्रफुल्ल से यह आत्मीयता पाकर सुमित्रा को उसके प्रति गहरी कृतज्ञता प्रकट करनी थी, परन्तु जाने क्यो वह ऐसा कर नही सकी। सुमित्रा को इस सबका ध्यान आते ही, अपने - आप पर एक खीझ हो रही है। क्यो उसने यह कह दिया—'यह कैसे हो सकता है!'

प्रफुल्ल के स्थान पर अन्य कोई होता , तो सुमित्रा की ऐसी उचटी-उचटी बात सुनकर कदाचित् यही कह बैठता कि नही हो सकता, तो न सही। भाड मे जाओ तुम और तुम्हारी अकिचनता। परन्तु यह सुनकर प्रफुल्ल की आत्मीयता और भी गहरी हो उठी थी—'हो सकता है, सुमित्राजी! यदि मै गलत नही समझ सका हूँ, तो कह सकता हूँ कि दिवगत आत्मा की इच्छा-अनिच्छा और सन्तोष की बात छिडते ही आप बहुत गम्भीर हो उठी थी—कदाचित् अपने पिता की स्मृति से आप भर उठी थी। इसका अर्थ मै यह समझ सका हूँ कि आपके पिता की कोई अन्तिम इच्छा अधूरी रह गई है।'

प्रफुल्ल की यह बात सुनकर न केवल उस समय सुमित्रा को गहरा आश्चर्य हुआ था, बल्कि अब तक उसका वह आश्चर्य वैसा ही बना हुआ है। कितना ठीक है प्रफुल्ल का अनुमान! सुमित्रा ने स्वीकार किया कि प्रफुल्लजी ने उसकी आन्तरिक व्यथा को न केवल भली-भॉति पढ-समझ लिया है, बल्कि उसका उपचार करने का भी निश्चय कर लिया है। यदि यह बात न होती, तो सम्भाषण के सिलसिले मे वह क्यो कहते—'मुझे आप अपने सुख-दुख से बहुत दूर रखना चाहती है? आप जिस रोग से पीडित है, जिस चिन्ता से अभिभूत है, उसका कोई उपचार भी नही करना चाहती?'

सुमित्रा को हलकी-सी हॅसी आ गई। अरे, इस दुनिया मे ऐसा कौन रोगी होगा, जो रोगजन्य कष्ट से मुक्ति न चाहता हो—उसका उपचार न कराना चाहता हो? परन्तु जिस उपचार का यह प्रसङ्ग था, उसकी बात एक नारी—सो भी कुमारी—किसी पुरुष के समक्ष, भला कैसे स्वीकार कर सकती है? यही कारण था कि सुमित्रा ने प्रफुल्ल के आत्मीयता से ओतप्रोत इस प्रश्न का उत्तर भी गोलमोल दे दिया था। परन्तु प्रफुल्ल इतने पर भी अपने निश्चय पर अडिग रहा—अचल रहा।

सुमित्रा के अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि प्रफुल्लजी निश्चित रूप से उसकी ओर आकृष्ट हो चुके है। यदि उनका आकर्षण सच्चा न होता—

निश्छल न होता, तो मेरे पिता की अन्तिम इच्छा जानने के लिए इतना आग्रह कभी न करते। आज वह मेरे यहाँ चाय पीने आ रहे है, परन्तु इस शर्त्त पर कि मे अपने पिताजी की अन्तिम इच्छा उन्हे बतला दूँ।

परन्तु पिताजी की अन्तिम इच्छा बतला देने मे सुमित्रा जिस असमजस मे पडी है, उसे प्रफुल्ल शायद नही समझ रहा है। वह समझ ही कैसे सकता है? और, सुमित्रा ने स्वीकार किया कि यह सब न समझते हुए भी जब प्रफुल्ल उसकी ओर इतना आकृष्ट हो चुका है, तब सुमित्रा को भी अब किसी असमजस की भूलभुलैयाँ मे चक्कर काटना उचित नही। उसने निश्चय कर लिया कि आज चाय पीते समय वह अपने पिता की अन्तिम इच्छा निसकोच रूप से प्रफुल्ल के सामने प्रकट कर देगी।

विद्यालय से लौटकर आज सन्ध्या समय सुमित्रा इन्ही सब विचारो मे डूबते-उतराने लगी थी। जब दीवार-घडी ने सुरीले स्वर मे पौने सात की घण्टियाँ बजा दी, तब सुमित्रा की विचार-धारा सहसा टूट गई। उसे स्मरण आया कि आठ बजे प्रफुल्लजी को चाय पिलाने का उसने निमत्रण दे रक्खा है। बैठक से उठकर उसने परिचारिका को बाजार से बगाली मिठाइयाँ, समोसे, दालमोठ और कुछ फल लाने भेज दिया। फिर रसोईघर मे जाकर महराजिन से कह दिया कि ठीक आठ बजे उसे आज चाय तैयार करनी है।

प्रफुल्ल को चाय पिलाने की प्रारम्भिक तैयारियो का सिलसिला बाँधकर सुमित्रा फिर अपनी बैठक मे चली गई और एक कोच पर जा बैठी।

बडी अधीरता से यह समय काट रही थी सुमित्रा। उसे लगता था, मानो घडी की सुइयाँ आज बहुत धीमी गति से सरक रही है। इस अधीरता पर वह बीच-बीच मे खीझ भी उठती थी। आखिर प्रफुल्ल उसका है कौन? क्यो उसके लिए वह इतनी अधीर हो रही है? परन्तु दूसरे ही क्षण उसका मन पलट जाता कि वाह, प्रफुल्ल उसका क्या नही है? अरे, जो हमारे सुख-दुख मे अपना हाथ बँटाने के लिए व्यग्र हो, उत्सुक हो और आत्मीयता का अमृतपान कराने मे स्वय सन्तोष का अनुभव करता हो, उसे अपना नही तो क्या

पराया—बेगाना—कहा जा सकता है ? नही, भूलकर भी नही ।

सुमित्रा की खीझ फिर कुछ बढने लगी। उसने जाकर रेडियो का स्विच दबा दिया। इस समय वह कोई ऐसा सुरीला सगीत सुनना चाहती थी, जिसे सुनकर वह आत्मविभोर हो सके और इस आन्तरिक ऊहापोह से मुक्ति पाकर ऐसी दुनिया मे पहुँच सके, जहाँ इस ससार का कोई दुख-दर्द न हो, अपना-पराया न हो, बल्कि चिर वसन्त की मादकता हो, सलोने सावन की बहार हो, और मन की सारी उमगे पूरी होने मे किसी विघ्न-बाधा का नाम न हो।

परन्तु सुमित्रा की यह आशा रेडियो से पूरी न हो सकी । उसे रेडियो-कार्यक्रम का ध्यान नही था, अन्यथा इस समय वह मादक सगीत सुनने की आशा करती ही नही। रेडियो का स्विच दबाते ही उसने सुना कि इस समय ग्राम-पचायत की कॉव-कॉव चल रही है। तत्क्षण उसने रेडियो का स्विच 'आफ' कर दिया—बन्द कर दिया । सुमित्रा को रेडियो-कार्यक्रमो मे इस 'ग्राम-पचायत' से बडी नफरत है।

वह फिर कोच पर जा बैठी। उसकी खीझ बढती ही जा रही थी। अपने भोले और भ्रमित मन पर उसका मानो कोई नियन्त्रण नही रह गया था। तभी सहसा टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी।

क्षण-भर को उसे लगा कि बहुत सम्भव है, प्रफुल्ल का ही फोन हो। वह सोल्लास फोन के निकट जा पहुँची। रिसीवर उठाकर बोली—'हल्लो ! आप कहाँ से बोल रहे है ?'

'बोल रहा हूँ !' किसी ने दोहराया और उसके खिलखिलाने की आवाज भी सुमित्रा को सुनाई पडी।

सुमित्रा को यह आवाज पहचानते देर न लगी, कहा उसने—'ओहो ! आप बोल रही है, नलिनी जीजी !'

'गनीमत है कि मेरी बोली पहचान गई, समित्रा !' नलिनी ने टेली-

फोन के दूसरे छोर से बात करते हुए कहा--'मै समझती हूँ, इस समय तुम किसी नारी की नही, नर की प्रतीक्षा मे हो।'

'यह आप क्या कह रही है, जीजी ?' सुमित्रा ने सकपकाते हुए कहा।

'मै नही, तुम स्वय पूछ रही थी बहिन, कि आप कहाँ से बोल रहे है ?'

'ओहो!' सुमित्रा ने प्रकृतिस्थ होते हुए कहा—'फोन पर मै ऐसा अकसर पूछ बैठती हूँ, जीजी! कारण, छात्राओ के अभिभावक ही बहुधा टेलीफोन पर बात किया करते है।'

'अच्छा, इस मजाक को छोडो!' नलिनी ने कहा—'यह बतलाओ, आजकल हम लोगो से तुम नाराज क्यो हो ?'

'यह किसने कहा, जीजी ?'

'तुमने स्वय।'

'मैने!' गहरे आश्चर्य के साथ सुमित्रा ने कैफियत देते हुए कहा—'किससे और कब कहा मैने ?'

'मेरी भोली बहिन!' नलिनी ने कहा— 'मेरे कहने का यह अर्थ है कि जब तुम कई दिनो तक हम लोगो से मिलती-जुलती नही, तब तुम्हारे कहे बिना ही हम यदि यह समझ ले कि तुम नाराज हो, तो... ।'

'तो यह मेरे साथ आपका अन्याय है।' सुमित्रा ने नलिनी की बात पूरी होने के पहले ही उसे टोक दिया—'मिलने-जुलने की बात तो समय और सुविधा पर निर्भर करती है न, जीजी! परन्तु नाराज होना या मुकर जाना तो मन का व्यापार है। और, मेरा मन स्वप्न मे भी आपसे कभी मुकर नही सकता—नाराज नही हो सकता। जन्म-जन्म तक मै आपको भूल नही सकती, जीजी!

'बस कर बहिन!' नलिनी ने कहा—'कृतज्ञता की इस बौछार से कही तुम मुझे बहा न देना।'

'डूबते को तिनके का सहारा होता है न, जीजी! जब मै किसी प्रवाह मे

बह रही हूँ, तो आपको मेरे साथ बहना ही होगा, गीला भी होना पडेगा—मुझे बचाने के लिए ही सही।'

'सुमित्रा, तेरा यह रहस्यवाद मेरी समझ मे नही आ रहा है।' नलिनी ने कहा—'कुछ साफ-साफ कह, तो समझने की चेष्टा करूँ।'

'फोन पर यह सब कहना ठीक नही होगा, जीजी! दो-एक दिन मे ही आप से मिलूँगी और सब बतलाऊँगी!'

'कुछ-कुछ तो मै समझती हूँ, सुमित्रा! परन्तु ।'

'परन्तु समझकर भी मेरी समस्या हल नही करना चाहती?'

'अवसर आने पर तुम्हारी पहेली सुलझाने मे कुछ उठा न रखूँगी।'

'यह तो मै भी जानती हूँ कि जीवन-सग्राम के प्रत्येक मोर्चे पर मेरा कवच बनकर मेरी जीजी ही मेरी रक्षा करेगी।' सुमित्रा ने कहा—'लेकिन अभी-अभी आपने कुछ-कुछ समझने की जो बात कही है, जीजी, वह आखिर क्या है?'

'क्या करोगी पूछकर?'

'यह देखूँगी कि मेरी जीजी कहाँ तक मेरी समस्या को समझ सकी है!'

'ऐसी जल्दी क्या है? जब मिलोगी, तब बतला दूँगी!'

'आपकी मर्जी!' सुमित्रा ने विरक्ति के स्वर मे कहा।

'अरे! मालूम पडता है, तुम अभी सुनना चाहती हो। अच्छा, लो अभी सुनाए देती हूँ।'

'मेरी अच्छी जीजी! हाँ-हाँ, कहिए, मै सुन रही हूँ।'

'कुछ-कुछ समझने का मेरा आशय यही है सुमित्रा, कि अब तुम अपने पिता की अधूरी अच्छा को शायद शीघ्र ही पूरी करना चाहती हो।'

'यह तो कोई नई बात नही हुई, जीजी!'

'तो नई बात भी सुन ले।' नलिनी ने कहा—'अब तू जीवन-डगर पर अकेले यात्रा नही करना चाहती, बल्कि किसी जीवन-सगी के साथ ।'

'बस करो , जीजी !' सुमित्रा ने बीच मे ही कहा—'मालम पडता है, नागर जीजा ने इधर कोई नई बात ।'

'कह दी है !' नलिनी ने भी बीच मे ही टोक दिया—'यही न सुमित्रा ! लेकिन इसमे चौकने की बात ही क्या है ? यह सब अस्वाभाविक नही है। उम्र का तकाजा भी तो कोई चीज है न ! खैर, अब भेट होने पर ही सारी बाते करूँगी।' और नलिनी ने सुमित्रा की अन्य कोई बात सुने बिना ही टेलीफोन का सम्बन्ध तोड दिया।

सुमित्रा ने भी टेलीफोन का रिसीवर यथास्थान रख दिया और कोच पर जाकर बैठ गई। उसे लगा कि प्रफुल्ल घोष और निर्मल नागर दोनो मे अभिन्न मित्रता है। बहुत सम्भव है, प्रफुल्लजी ने नागर जीजा को मेरे आकर्षण का कोई सुराग दे दिया हो। और, कोई भी पुरुष अपनी पत्नी से ऐसी नई बात शायद ही छिपाकर रखता हो। फिर नागर जीजा जानते है कि नलिनी बहिन मुझे अपनी सहोदरा से भी बढकर चाहती है। ऐसी दशा मे यदि उन्होने प्रफुल्लजी के प्रति मेरे आकर्षण की खबर नलिनी बहिन को सुना दी हो, तो इसमे आश्चर्य ही क्या हो सकता है !

सुमित्रा ने स्वीकार किया कि नलिनी बहिन का यह कथन ठीक ही है—'उम्र का तकाजा भी तो कोई चीज है न ! यह सब अस्वाभाविक नही।' फिर ऐसा हो जाने मे सुमित्रा की कोई हानि भी तो नही। आखिर उसका आकर्षण छिपा तो रहेगा नही। छिपाकर वह स्वय नही रखना चाहती। अत जो कुछ हो रहा है, सब ठीक है।

सुमित्रा इसी विचार-धारा पर शायद अधिक समय तक तिरती रहती, परन्तु परिचारिका ने आकर उसे टोक दिया, कहा—'फल और मिठाइयाँ मै ले आई हूँ, आचार्याजी।'

सुमित्रा ने प्रकृतिस्थ होते हुए कहा—'अच्छा, इसी कमरे मे प्रफुल्ल घोष आज चाय पिएँगे। आठ बजे वह आएँगे । सारी तैयारी कर रक्खो।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'कर सकोगी तुम यह सब ?'

'क्यो नही !' परिचारिका ने कहा—'चाय पिलाने की तैयारी कुछ पहली बार थोडे ही कर रही हूँ। आपके यहाँ रहकर यह तो मेरे बाएँ हाथ का काम हो गया है, आचार्यजी !'

'अच्छा, तो जाओ।' महराजिन से कहकर चाय की सब तैयारी कर रक्खो। पन्द्रह-बीस मिनट मे घोष साहब आते ही होगे।'

'जी, अच्छा !' कहकर परिचारिका उस कमरे से चली गई।

—२२—

आठ बजने मे ठीक पॉच मिनट शेष थे कि बाहरी दरवाजे पर किमी मोटर के रुकने की आवाज सुनाई पडी। सुमित्रा समझ गई कि प्रफुल्लजी आ गए है। कोच से उठकर वह सोल्लास अपने अतिथि का स्वागत करने बाहर जा पहुँची।

बाहरी बरामदे मे पहुँचकर सुमित्रा ने देखा कि प्रफुल्ल घोष अपनी मोटर से उतरकर बरामदे की तरफ आ रहे है। सुमित्रा के बढते पग सहसा रुक गए। वह बरामदे मे ही खडी हो गई। शायद यह प्रतीक्षा करने लगी कि प्रफुल्ल स्वय उसके निकट आकर उसे अभिवादन करे। परन्तु उसी क्षण उसे लगा कि यह ठीक न होगा। किसी आमन्त्रित व्यक्ति को अपने घर बुलाकर ऐसी झिझक और अपेक्षा अशोभन ही कही जाएगी।

सुमित्रा इसी प्रकार अपने-आपमे उलझ रही थी कि प्रफुल्ल ने उसके निकट पहुँचकर कहा—'मै समझता हूँ, ठीक समय पर ही मै आ गया हूँ।'

प्रफुल्ल की बात मानो सुमित्रा के कानो मे प्रवेश नही कर सकी। उसने चुपचाप अपने दोनो हाथ उठाकर प्रफुल्ल को अभिवादन किया और कहा—'आइए, घोष साहब!'

सुमित्रा के अभिवादन से प्रफुल्ल को प्रसन्नता तो हुई, किन्त यह देख उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ कि सुमित्रा अपने-आपमे कुछ खोई-सी और उलझी-सी है। यदि यह बात न होती, तो प्रफुल्ल की बात का वह कुछ-न-कुछ उत्तर अवश्य देती। प्रफुल्ल को जैसे सहसा कोई स्मरण आ गया और

उसने पूछा—'मालूम पडता है, इस समय आपके मानस मे कोई ज्वारभाटा आ गया है, सुमित्राजी!'

सुमित्रा ऐसे रहस्यपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने के लिए तनिक भी प्रस्तुत नही थी। उसने आश्चर्य से भरकर प्रफुल्ल की ओर देखा और भीतरी कमरे की तरफ बढते हुए कहा—'कैसा ज्वारभाटा, घोष साहब?'

'यह तो आप स्वय समझती होगी, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'कल आप कह रही थी न, मानव के मानस मे कब, कैसा ज्वार-भाटा आ जाता है, इसे सदा शब्दो द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता।'

'हाँ, कहा तो था, परन्तु इस समय इस प्रसग का आशय मै नही समझ सकी।'

अब तक सुमित्रा अपनी बैठक मे पहुँच चुकी थी। अत प्रफुल्ल से एक कोच पर बैठने का सकेत करते हुए उसने कहा—'बैठिए तो सही, फिर अपनी पहेली का विश्लेषण कीजिए।'

प्रफुल्ल जब कोच पर बैठ गया, तो निकट ही पडे दूसरे कोच पर सुमित्रा भी बैठ गई और बोली—'हाँ, अब आप अपनी बात साफ-साफ कहिए, तो उसका उत्तर देने की मै चेष्टा करूँ।'

'मैने ऐसी कोई अस्पष्ट बात नही कही, जिसका स्पष्टीकरण करना पडे।'

'तब ज्वारभाटे की बात आपको कैसे याद आई?'

'इसलिए कि आप अपने-आपमे खोई-सी और उलझी-सी दीख पडी।' प्रफुल्ल ने कहा—'मैने आपसे आते ही कहा था कि ठीक समय पर ही सम्भवतः मै आ गया हूँ। परन्तु आपने उसे एकदम सुना ही नही।'

'ओह! अब समझी!' सुमित्रा ने कहा और तनिक खुलकर हँस पडी वह। हँसी समाप्त होते ही उसने कहा—'आपका अनुमान गलत नही है। जाने क्यो, आपके आते ही मै कुछ उलझ गई थी अपने-आपमे।'

'तो मै थोडी देर के लिए यहाँ से चला जाऊँ?'

'नही-नही, यह कैसे हो सकता है ? यह मैंने कब कहा ? आप आखिर मुझे ठीक-ठीक समझने की चेष्टा क्यो नही करते, घोष साहब ?'

'चेष्टा तो मै बराबर कर रहा हूँ, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने स्निग्ध मुसकराहट के साथ कहा—'परन्तु सफलता नही मिल रही है।'

'कभी-न-कभी सफलता मिल ही जाएगी !' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की निश्छलता पर न्योछावर होते हुए अचानक ही कह दिया।

परन्तु दूसरे ही क्षण उसे उपनी इस अभिव्यक्ति पर खीझ हो आई। आखिर उसे यह बात कहने की अभी आवश्यकता ही क्या थी ? क्या समझेगे प्रफुल्लजी उसकी इस अभिव्यक्ति का अर्थ ? सोचते होगे, सुमित्रा भी साधारण नारी-जैसी ही चचल है। फिर उसने अपने-आप ही यह सोचकर सन्तोष कर लिया—ऊँह ! ऐसी तनिक-तनिक-सी बातो पर वह कहाँ तक विचार किया करेगी और सरदर्द मोल लिया करेगी। तभी उसने कोच के सामने रखी मेज पर विजडित बिजली का एक बटन दबा दिया, जिसकी सुरीली टनटनाहट निकट के ही किसी दूसरे कमरे मे साफ-साफ सुनाई पडी।

दो मिनट के भीतर ही प्रफुल्ल ने देखा कि एक परिचारिका चाय का ट्रे लेकर हाजिर हो गई और दबे पाँव अदब के साथ प्रफुल्ल के सामने एक छोटी मेज पर रखकर चली गई।

बगाली मिठाइयो, नमकीन ओर फलो के साथ चाय देखकर सुमित्रा की सुरुचि का अनुमान कर प्रफुल्ल एक अव्यक्त प्रसन्नता से भर उठा। लगभग वही चीजे सुमित्रा ने चाय के साथ प्रस्तुत की थी, जो प्रफुल्ल ने कल सुमित्रा के लिए जुटा रक्खी थी। ऐसा करने मे सुमित्रा की अन्य कोई भी भावना रही हो, परन्तु इसे अस्वीकार नही किया जा सकता कि प्रफुल्ल की रुचि का उसने विशेष ध्यान रक्खा है।

प्रफुल्ल ने सुमित्रा के साथ चाय पीते हुए आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव किया। उसे सहसा अपनी दिवगत पत्नी—शैल—का स्मरण हो आया। शैल मे सबसे बडा गुण यही था कि वह प्रफुल्ल की रुचि-अरुचि का सदा ध्यान रखती

थी। रूप-रङ्ग का जहाँ तक सम्बन्ध है, सुमित्रा की ओर प्रफुल्ल पहले से ही आकृष्ट हो चुका है। उसके शिष्ट व्यवहार और मधुर वाणी से भी प्रफुल्ल अत्यन्त प्रभावित हो चुका है। और, आज रुचि-अरुचि को परखने की यह विशेषता देखकर तो प्रफुल्ल मानो इस सुमित्रा पर एकदम न्योछावर हो उठा।

चाय पीते-पीते प्रफुल्ल ने कहा—'मै देखता हूँ, सुमित्राजी, आपमे वही सारी विशेषताएँ है, जो मेरी दिवगत पत्नी शैल मे थी।'

सुमित्रा चुप रही। प्रफुल्ल की इस बात का वह उत्तर ही क्या देती ? हाँ, प्रफुल्ल की यह बात सुन, सुमित्रा का रोम-रोम गद्गद अवश्य हो उठा।

'अरे! आप चुप क्यो है ?' प्रफुल्ल ने कहा—'क्या मेरी इस बात से आपको कुछ बुरा लग गया ?'

'ऊँहुँ!' सुमित्रा ने सिर हिलाते हुए कह दिया।

'तब मै अपनी बात आगे बढा सकता हूँ ?'

'ऊँहुँ!' सुमित्रा ने सिर हिलाते हुए प्रफुल्ल को ऐसा करने से रोक दिया।

'क्यो ?' प्रफुल्ल ने अधीरता के साथ छोटा-सा प्रश्न किया।

'इसलिए कि आपकी स्मृति इस समय जिस रस-सागर मे डूब-उतरा रही है, उसे आप इस पृथ्वी पर शायद न पा सके।'

'सुमित्राजी! आप कभी-कभी बहुत गम्भीर होकर बात करने लगती है।' प्रफुल्ल ने व्यग्रता के साथ कहा—'और मै आपका आशय एकदम नही समझ पाता।'

'यह बात तो गम्भीर नही है, घोष साहब!' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए कहा—'आप अपनी स्नेहशीला पत्नी का जो स्मरण कर रहे है, और उनकी जिन विशेषताओ की झलक मुझमे देखने की बात कह रहे है, मै कहती हूं, यह सब आपका दृष्टि-दोष है।'

प्रफुल्ल मानो आकाश से पृथ्वी पर गिर पडा! क्या कह रही है यह

सुमित्रा! यह सब मेरा दृष्टिदोष है? तो क्या मैंने इस सुमित्रा को लेकर अब तक जिस काल्पनिक रगमहल का निर्माण किया है, वह सब इन्द्रजाल ही है? उसने कुछ खीझ प्रकट करते हुए कहा—'अब तक आप गम्भीर ही थी, परन्तु अब रहस्यमयी हो रही है। क्या आप अपनी बात का विश्लेषण कर सकती है?'

'किस बात का विश्लेषण?'

'दृष्टिदोष वाली बात का।'

'अरे! यह तो कोई रहस्यमयी बात नही है, घोष साहब!' सुमित्रा ने मधुर मुसकराहट के साथ कहा—'फिर भी आपका आग्रह है, तो मैं इसका विश्लेषण किए देती हूँ। देखिए, ईश्वर की इस सृष्टि मे—ससार मे—दो व्यक्तित्त्व कभी एक-से नही पाए जाते। ईश्वर साधारण कलाकार नही है। उसकी कला-सृष्टि मे कुछ-न-कुछ अन्तर सर्वत्र पाया जाता है। इतने पर भी यदि दो नारियो मे आप समानता देख रहे है, सारी विशेषताएँ एक-सी देख रहे हैं, तो यह आपका दृष्टिदोष ही कहा जाएगा न?'

सुमित्रा की पैनी बुद्धि पर प्रफुल्ल स्तब्ध रह गया। किस सुन्दर ढग से सुमित्रा ने अपनी बात का विश्लेषण कर दिया कि प्रफुल्ल निरुत्तर-सा रह गया। उसके अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि वास्तव मे सुमित्रा का कथन सत्य है—ईश्वर साधारण कलाकार नही है। उसकी कला-सृष्टि मे दो व्यक्तित्त्व कभी एक से नही पाए जाते। उनमे कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य रहता है। कुछ समय लगा प्रफुल्ल को सुमित्रा की इस बात का उत्तर देने मे।

प्रफुल्ल को इस प्रकार मौन देख, सुमित्रा ने कहा—'यह मैं कभी नही मान सकती कि शैल बहिन की सारी विशेपताएँ मुझमे होगी।'

'न सही सारी विशेषताएँ, परन्तु अधिकाश विशेषताएँ आपमे है।' प्रफुल्ल ने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए कहा—'मेरा मतलब जिन विशेषताओ से है, सुमित्राजी, उनका उल्लेख किए बिना काम न चलेगा। रूप-रङ्ग, शिष्ट व्यवहार और मधुरवाणी के साथ आपमे मेरी रुचि-अरुचि को समझने की जो विशे-

षता है, वह मेरी शैल की स्मृति को साकार रूप देने के लिए पर्याप्त है।'

'अब मै आपकी बात मान सकती हूँ।' सुमित्रा ने कहा और पुन मेज पर लगे बिजली के बटन को दबा दिया, जिसकी सुरीली टनटनाहट फिर किसी दूसरे कमरे मे साफ-साफ सुनाई पडी। इसके साथ ही परिचारिका आ पहुँची और चाय-नाश्ते के खाली पात्रो को लेकर तथा मेज को साफ करके चली गई। दो-एक मिनट के भीतर ही वह पान के बीडे और सिगरेट का डिब्बा लाकर प्रफल्ल के सामने रख गई।

—२३—

सुमित्रा की सुरुचि और आधुनिकता को इतने निकट से देखने का प्रफुल्ल के लिए यह पहला अवसर था। परिचारिका को बुलाने आदि की यात्रिक व्यवस्था देख, प्रफुल्ल दग रह गया। वह स्वय एक लक्ष्मीपुत्र है, परन्तु ऐसी व्यवस्था अब तक वह अपने निवास-स्थान मे नही कर सका।

'पान और सिगरेट लीजिए, घोष साहब!' सुमित्रा ने अनुरोध करते हुए पान की तश्तरी और सिगरेट का डिब्बा प्रफुल्ल की ओर बढाते हुए कहा और स्वय भी पान के दो बीडे लेकर चबा लिए।

प्रफुल्ल ने पान के बीडे चबाकर सिगरेट सुलगाया और कहा—'देखता हूँ, आपकी रहन-सहन का ढग एकदम आधुनिक है।

'बीसवी सदी मे रहकर और इतना पढ-लिखकर मानव आधुनिक तौर-तरीको को अपनाए बिना रह नही सकता, घोष साहब! इस वैज्ञानिक युग मे हमारा सारा जीवन यात्रिक हो उठा है। बिना यन्त्रो की सहायता के हम सुविधा-पूर्वक रह नही सकते।'

'सुविधाओ का जहाँ तक सबध है, निश्चय ही यन्त्रो का स्थान बडा महत्त्वपूर्ण है, परन्तु इससे मानव-जीवन मे निष्क्रियता आ जाती है—वह अपने हाथ-पैर हिलाने मे भी कष्ट का अनुभव करने लगता है।'

'प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते है, घोष साहब!' सुमित्रा ने प्रफुल्ल की बात काटते हुए कहा—'फूल के साथ कॉटो का, प्रकाश के साथ अन्धकार का और

जीवन के साथ मृत्यु का अविच्छिन्न सम्बन्ध है।' और सुमित्रा मुसकरा उ ी।

यह बात सुनते ही प्रफुल्ल को मानो किसी विस्मृत बात का स्मरण आ गया। कहा उसने—'आप बिलकुल ठीक कह रही है, सुमित्राजी! जीवन के साथ मृत्यु की बात सुनते ही मुझे एक बात याद आ गई।'

'वह क्या?' सहज जिज्ञासा के साथ सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'आपके स्वर्गीय पिताजी की अन्तिम और अधूरी इच्छा जानने की।' कल आपने वादा भी किया था बतला देने का।'

'हाँ, किया था। आज आपको अवश्य बतलाऊँगी। लेकिन परलोक सबधी जिन बातो का आपने अध्ययन किया है, वे सुन लूँ तब यह सब बतलाऊँगी।'

'अपनी शैल को खोकर परलोकवाद का थोडा-बहुत अध्ययन मुझे करना ही पडा, सुमित्राजी! आत्मा के अस्तित्त्व पर पहले मेरा विश्वास नही था, परन्तु अब हो गया है।'

'इसका कोई प्रमाण भी है?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'क्यो नही।' प्रफुल्ल ने कहा—'आत्मा का अस्तित्त्व अक्षुण्ण न रहता, तो पुनर्जन्म का एक भी उदाहरण हमे इस दुनिया मे कही खोजने पर भी न मिलता! यदि इस शरीर के साथ आत्मा का भी अन्त हो जाया करता, तो पुनर्जन्म होता ही कैसे? पत्र-पत्रिकाओ में, सम्भव है, पुनर्जन्म के कुछ उदाहरण आपने भी पढे होगे।'

'ऐसे समाचार पढे अवश्य है, परन्तु जाने क्यो, पुनर्जन्म पर मुझे सहसा विश्वास नही होता।'

'परलोक मे पहुँचकर यह विश्वास भी हमे कर लेना पडता है।'

'लेकिन परलोक मे पहुँच जाने के बाद हमारा विश्वास-अविश्वास इस दुनिया के किसी मानव को ज्ञात ही कैसे हो सकता है?'

'आत्माओ से बातचीत करके हम यह जान लेते है, सुमित्राजी! इसीलिए तो मैंने परलोकवाद का अध्ययन किया है।' प्रफुल्ल ने सुमित्रा

की जिज्ञासा शान्त करने का प्रयत्न करते हुए कहा—'पटना का एक उदाहरण सुनकर सम्भवत तुम्हारी जिज्ञासा शान्त हो जाएगी। वहाँ के एक काग्रेस कार्यकर्त्ता स्वर्गीय मजहरुल हक के पुत्र का देहान्त हो जाने पर, परलोक विद्या से उनका बडा अनुराग हो गया था। उन्होने अपने पुत्र की आत्मा का आह्वान कर पूछा कि पुनर्जन्म के सबध मे उसका क्या विचार है। पुत्र ने कहा कि जीवित अवस्था मे उसे पुनर्जन्म पर विश्वास नही था, परन्तु परलोक मे उसने प्रत्यक्ष देखा कि वहाँ की अनेक आत्माएँ मृत्युलोक मे आती है। इसलिए वह भी पुनर्जन्म मे विश्वास करने लगा है।'

'तब तो हमे भी विश्वास करना पडेगा।' सुमित्रा ने कहा और उत्सुकता के साथ पूछा—'अच्छा, यह तो बतलाइए, परलोकगत व्यक्ति की आत्मा को बुलाने से उसे कोई कष्ट तो नही होता ?'

'यह हमारा भ्रम है, सुमित्राजी! आत्माओ से की गई बातचीत द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि यहाँ बुलाने से उन्हे कोई कष्ट नही होता, बल्कि प्रसन्नता होती है और कभी-कभी वे हमे सहायता भी पहुँचाती है। लेकिन कुछ आत्माएँ ऐसी भी होती है, जो यहाँ नही आना चाहती। ऐसी आत्माएँ बुलाने पर भी नही आती। यदि कभी आ जाती है, तो यही कहती है कि उन्हे हम न बुलाया करे। कभी-कभी यह भी होता है कि किसी विशेष आत्मा को बुलाने पर उसके साथ दूसरी आत्माएँ भी आ पहुँचती है और वे भी अपने सन्देश दे जाती है। इससे स्पष्ट है कि अधिकाश आत्माएँ हम लोगो से बात करने की इच्छुक रहती है।'

'परलोकगत आत्माओ से सम्बन्ध स्थापित करने की विधि क्या है, प्रफुल्लजी ?'

'मालूम पडता है, आज आप परलोकवाद सम्बन्धी सारी बाते पूछकर ही दम लेगी, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा—'क्या आप अपने दिवगत पिताजी की आत्मा को बुलाना चाहती है ?'

'यदि मै कहूँ कि हाँ, तो यह अस्वाभाविक न होगा, प्रफुल्लजी!' सुमित्रा

ने कहा—'लेकिन यह निश्चय तो तभी किया जा सकेगा, जब मै आपसे इस सम्बन्ध की सारी बाते जान लूँ और यह समझ लूँ कि ऐसा करना सम्भव होगा अथवा नही।'

'सम्भव क्यो न होगा!' प्रफुल्ल ने सिगरेट का एक कश खीचकर और ढेर-सा धुआँ नाक के दोनो नथुनो तथा मुह से उगलते हुए कहा—'मै स्वय अपनी स्वर्गीया पत्नी—शैल—की आत्मा को दो-तीन बार बुला चुका हूँ और उससे बातचीत कर चुका हूँ।'

'यदि आप इन आत्माओ से सम्बन्ध स्थापित करने की विधि बतला दे, तो मै भी अपने पिता की आत्मा को बुलाना चाहूँगी।'

'परलोकगत आत्माओ से सम्बन्ध जोडने के लिए तीन बाते आवश्यक है। पहली यह कि जो लोग प्रयोग करे, उनकी मनोदशा एकदम शुद्ध हो, अर्थात् उनमे पक्षपात या अविश्वास की भावना न हो। दूसरी बात यह कि एक माध्यम हो और तीसरी यह कि जिस आत्मा का आह्वान किया जाए, उसकी सहायता मिल सके।'

'पक्षपात या अविश्वासवाली बात तनिक स्पष्ट कीजिए, घोष साहब!' सुमित्रा ने अनुरोध के स्वर मे कहा।

'परलोक-विज्ञान को आध्यात्मिक विज्ञान माना गया है, सुमित्राजी! जब तक हम सच्चे मन और शुद्ध भाव से आत्मा का आह्वान नही करेगे, तब तक आत्मा आ नही सकेगी। शकित हृदय से आत्मा को बुलाने मे हम कभी सफल नही हो सकते। एक बात और प्रयोग के समय कुछ सुगन्धित पुष्प और अगरबत्ती आदि भी हो, तो इससे आत्माओ को बल मिलता है और हमारा प्रयोग अधिक सफल होता है।'

'और माध्यम किसे बनाना चाहिए? किसी स्त्री को या पुरुष को?'

'इसके लिए कोई बन्धन नही। स्त्री या पुरुष कोई भी माध्यम हो सकता है। माध्यम के द्वारा ही हम आत्माओ से बातचीत कर सकते है, उनके सन्देश और

फोटो ले सकते है और उन्हे प्रयत्क्ष देख भी सकते है।' प्रफुल्ल ने कहा।

'प्रत्यक्ष देख सकते है!' सुमित्रा ने ऑख फाडकर प्रफुल्ल की ओर देखते हुए कहा—'यह आप क्या कह रहे है?'

'मै एकदम सत्य कह रहा हूँ, सुमित्राजी! आपको आश्चर्यान्वित करने के लिए मै यह सब नही कह रहा हूँ। एक पाश्चात्य लेखक श्री हेरी प्राइस ने अपनी पुस्तक 'फिफ्टी ईयर्स ऑफ फिजिकल रिसर्च' मे एक ऐसी ही ऑखो देखी घटना का उल्लेख किया है।'

'मुझे भी सुनाइए न, वह घटना!' सुमित्रा ने अनुरोध किया।

'सक्षेप मे वह घटना इस प्रकार है एक लडकी थी रोसेली। उसके पिता प्रथम महायुद्ध मे मारे गए थे। विधवा पत्नी और इस पुत्री को वह छोड गए थे। कुछ वर्षो के बाद इस पुत्री का भी देहान्त हो गया। रोसेली की माँ परलोक-विद्या को जानती-मानती थी। उसने प्रयोग किए और रोसेली की आत्मा आने लगी। श्री हेरी स्वय एक दिन इस प्रयोग मे सम्मिलित हुए। प्रयोग के समय उन्हे लगा कि कोई वस्तु उनके निकट आ पहुँची है। ऑखो से वह वस्तु दिखाई तो नही दी, परन्तु एक प्रकार की सुगन्ध आने लगी। इसके बाद उनके घुटने पर किसी कोमल वस्तु का स्पर्शानुभव हुआ। श्री हेरी ने रोसेली की मॉ से आज्ञा लेकर उसके सिर पर हाथ फेरा, तो हाथो को कुछ उष्णता का अनुभव हुआ। यह उष्णता उतनी नही थी, जितनी साधारण मनुष्य के शरीर मे होती है। श्री हेरी ने उसे श्वास लेते हुए भी देखा। उसके शरीर पर हाथ फेरने से उन्हे पता चला कि वह तीन फुट सात इच की होगी। इतना आकार किसी छ वर्ष की लडकी का ही हो सकता है। पूछने पर पता चला कि मृत्यु के समय रोसेली छ वर्ष की ही थी।'

'जब रोसेली की आत्मा की लम्बाई उतनी ही थी, जितनी कि मृत्यु के समय उसके शरीर की थी, तब आत्मा और जीवित व्यक्ति के आकार मे अन्तर क्या रहा?' सुमित्रा ने अपनी शका प्रकट की।

'निश्चय ही कोई अन्तर नही, परन्तु इसे हम आत्मा नही, सूक्ष्म शरीर कह सकते है। कारण, कुछ आत्माओ के फोटो भी लिये जा चुके है, जिनसे उन्हे स्पष्ट रूप मे पहचाना जा सकता है। यदि परलोकगत आत्मा और जीवित व्यक्ति के आकार मे अन्तर होता, तो हम उन्हे हरगिज न पहचान सकते। फिर इसका एक प्रमाण और है, सुमित्राजी! श्री हेरी ने रोसेली की आत्मा का हाथ उठाया और उसकी नाडी भी देखी थी। उसके हृदय के पास अपना कान ले जाकर हृदय की धडकन भी सुनी थी।'

'कहाँ-से-कहाँ पहुँच गए हम लोग!' सुमित्रा ने कहा—'आत्मा से सबध जोडने की विधि तो अब तक आपने बतलाई नही?'

'यह विषय ही ऐसा है, सुमित्राजी!' प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए कहा—'अच्छा, अब मै आपको आत्माओ से बात करने की सबसे सरल विधि बतलाता हूँ। इसके लिए तीन पैरो की एक गोल मेज आवश्यक है, जो डेढ फुट चौडी और ढाई फुट ऊँची हो। इस मेज के चारो ओर चार व्यक्ति कुर्सियो पर बैठ जाएँ और अपने हाथ उस मेज पर हलके रूप से रखकर आत्मा का आह्वान करे।'

'यह आह्वान कैसे किया जाता है?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'वह भी बतला रहा हू।' प्रफुल्ल ने कहा—'प्रयोग करनेवाले ऐसी ही आत्माओ का आह्वान करे, जो उनकी परिचित हो। आह्वान करते समय हमे ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि अमुक आत्मा को हमसे बात करने की वह अनुमति दे। ईश-प्रार्थना के बाद जिस आत्मा का हम आह्वान करना चाहते हो, उससे भी प्रार्थना करनी पडती है कि हम उससे बात करना चाहते है। वह कृपापूर्वक आवे। पितृगण दुष्टात्माओ से हमारी रक्षा करे।'

'ठहरिए, प्रफुल्लजी!' सुमित्रा ने प्रफुल्ल को टोक दिया—'मै अपनी दो-एक शकाओ का समाधान यहाँ चाहती हूँ।

'कहिए, क्या शकाएँ है आपकी?'

'पहली शका यह है कि ईश-प्रार्थना तो आस्तिक,ही कर सकता है, नास्तिक

नही। इस दशा मे क्या आत्माओ से बात करने के लिए आस्तिक होना आवश्यक है?'

'हॉ, सुमित्राजी! आस्तिक व्यक्ति ही परलोक-गत आत्माओ से बात कर सकता है, नास्तिक नही। फिर यह आस्तिकता और नास्तिकता तो इस मृत्युलोक का ही झमेला है। परलोक मे जाकर कोई भी आत्मा नास्तिक नही रह पाती। वहॉ सबको आस्तिक हो जाना पडता है। एक नास्तिक आत्मा ने अपन सदेश मे यह तथ्य प्रकट किया था। अब आपकी दूसरी शंका क्या है?'

'यह कि दुष्ट आत्माएँ हमे कुछ हानि भी पहुँचाती है क्या?'

'अवश्य! भूत-चुडैलो की बाते आपने सुनी ही होगी। ये दुष्ट आत्माएँ तरह-तरह से मनुष्यो को परेशान करती है। प्रयोग करते समय कभी-कभी ये आत्माएँ बीच मे ही आ जाती है और परेशान करने लगती है।'

'और आत्माओ के आह्वान का प्रयोग कितनी देर तक करना पडता है, घोष साहब?'

'यो तो प्रयोग अधिक-से-अधिक पन्द्रह मिनट तक ही करना चाहिए, लेकिन यह आवश्यक नही कि सफलता मिल ही जाएगी। सफलता न मिलने पर भी पन्द्रह मिनट के बाद प्रयोग स्थगित कर देना चाहिए। फिर दूसरे दिन वही प्रयोग दोहराया जाए। कभी-कभी पहले ही दिन सफलता मिल जाती है और कभी-कभी छ-छ महीने तक लगातार प्रयोग करना पडता है।'

'छ· छ महीने!' सुमित्रा ने साश्चर्य दोहराया—'बाप रे! तब यह प्रयोग सबके लिए सम्भव नही।'

'है क्यो नही, सुमित्राजी! इसके लिए अथक धैर्य्य आवश्यक है। प्रयोग की सफलता तो प्रयोग करनेवालो के विश्वास, उनकी शान्ति और पवित्रता पर निर्भर करती है।'

''यह कैसे पता चलता है कि जिस आत्मा को हमने बुलाया है, वह आ गई या नही?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'इसके लिए हमे मेज पर होनेवाली 'खट-खट' के आधार पर साकेतिक लिपि निश्चित कर लेनी पडती है। जैसे, एक खटके के लिए 'अ' और दो खटको के लिए 'आ', अथवा एक खटके के लिए 'हॉ' और दो के लिए 'नही'। इस प्रकार जब हमारी मेज पर 'खट्-खट्' करनेवाले खटके होने लगे, तब हमे समझ लेना चाहिए कि आत्मा आ गई है और हमसे बातचीत करना चाहती है। जहॉ तक बने, प्रारभ मे आत्माओ से ऐसे ही प्रश्न किए जाएँ, जिनके उत्तर 'हॉ' अथवा 'नही' मे दिए जा सके। इस प्रकार हम आत्माओ से अनेक प्रश्न कर सकते है और उनके उत्तर भी प्राप्त कर सकते है।'

'आत्माएँ स्वय लिखकर हमारे प्रश्नो के उत्तर नही दे सकती क्या ?'

'दे क्यो नही सकती, लेकिन यह सब माध्यम पर निर्भर करता है। यदि माध्यम-शक्ति प्रबल और पवित्र होती है, तो वह अपने हाथ मे जो पेन्सिल या कलम लेकर बैठ जाती है, वह आत्मा की प्रेरणा से स्वय कागज पर प्रश्नो के उत्तर अकित करने लगती है। यही नही, बल्कि विदेशो मे तो कुछ ऐसे प्रयोग भी किए जाते है, जिनमे आत्माओ की आवाज भी स्पष्ट सुनाई पडती है। आत्माओ के फोटो भी लिए जा चुके है। परन्तु ये प्रयोग हम लोगो के लिए सहज-सरल नही।'

'कहते है, मरते समय असह्य वेदना होती है। इस सम्बन्ध मे आपका परलोकवाद क्या कहता है, प्रफुल्लजी ?'

'एलन कार्डेक के मतानुसार यह कष्ट सूक्ष्म और स्थूल शरीर के पारस्परिक सम्मिश्रण पर निर्भर करता है। सूक्ष्म शरीर जब स्थूल शरीर को जल्द छोड देता है, तब क ट क न होता है। परन्तु अनेक आत्माओ से यह पता चल गया है कि यह कष्ट तभी तक रहता है, जब तक शरीर से आत्मा पृथक् नही हो जाती। इसके पश्चात् कोई कष्ट नही रह जाता।'

'आत्माओ के द्वारा परलोक की रूपरेखा का भी कोई पता चल सका या है नही ?'

'हॉ, एक आत्मा ने इस सबध मे उत्तर दिया था कि परलोक मे वह वृद्ध

नही है, बल्कि तरुण की भाँति शक्तिशाली है। उसका काया-पलट हो चुका है। उसे कोई कष्ट नही है, बल्कि असीम प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। स्थूल शरीर से आत्मा का विच्छेद होते ही वह शून्य आकाश मे पहुँच गया ओर किसी अज्ञात लहर के द्वारा ऐसे स्थान मे जा पहुँचा, जहाँ सुख ही सुख है। परलोक का अस्तित्त्व पृथ्वी के जीवन का ही एक भाग है। वहाँ भी पृथ्वी के जीवन की रूपरेखा बनी रहती है। हमारा स्वभाव बिलकुल नही बदलता। हमारी भावनाएँ भी ज्यो की त्यो बनी रहती है। केवल यह अनुभव होने लगता है कि हमारे सिर से एक बोझ उतर गया। जब कोई आत्मा परलोक मे जाती है, तो उसकी सम्बन्धी आत्माएँ उसके समीप आ जाती है। पृथ्वी के सबधियो का स्पर्श भी वह आत्मा यहाँ बराबर करती है, किन्तु उपयुक्त माध्यम के बिना वह अपने-आपको प्रकट नही कर सकती। स्वभावत आत्माओ की इच्छा पृथ्वी पर आने की नही होती, फिर भी उन्हे अपनी सन्तान से प्रेम रहता है। यदि परिजन दुखी रहते है, तो आत्मा को भी दुख होता है। परलोक मे भी आत्माएँ परस्पर मिलकर सत्सग का लाभ उठाती है। वहाँ के पुष्प बहुत ही सुन्दर और सुगन्धित होते है। परलोक मे आत्मा का जो सूक्ष्म शरीर रहता है, उसमे स्थूल शरीर की भाँति ही अनुभूति होती है। इस सूक्ष्म शरीर की आकृति, चिह्न और भाव, सब स्थूल शरीर जैसे ही होते है। श्राद्ध कर्म, पिण्डदान आदि से आत्माओ को बडा सन्तोष मिलता है।'

'परलोकवाद के सबध मे आज आपने प्राय सभी बाते मुझे बतला दी है। ये बाते कौतूहलप्रद तो है ही, साथ ही बडे काम की है। इन बातो को जानकर हम इस निश्चय पर पहुँचते है कि हमे सात्विक जीवन बिताने का अभ्यास डालना चाहिए।'

'परन्तु सन्यासी बन जाने की आवश्यकता भी नही है, सुमित्राजी!'

'आप विश्वास रखे, मै सन्यासिनी नही बनूँगी।' सुमित्रा ने कहा—'और यही मेरे पिताजी की अन्तिम तथा अधूरी इच्छा है।'

'मुझे सच्चा सुख होगा, सुमित्राजी, यदि मैं आपके पिताजी की अधूरी इच्छा को पूर्ण करने मे तनिक भी आपके काम आ सकूँ।' फिर एक क्षण रुककर प्रफुल्ल ने कहा—'आप जब चाहे, मुझे कसौटी पर कस सकती है।'

'अवसर आने पर आपका सहारा लेने मे मुझे भी प्रसन्नता होगी। आज इतना अधिक समय देने के लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।' और बाहर तक जाकर सुमित्रा ने प्रफुल्ल को बिदा कर दिया।

-२४-

पुत्र-विच्छेद की प्रलयङ्कर आँधी और जर्जर तन की व्याधियो से सघर्ष करते-करते देवदत्त की पत्नी—मीरादेवी—का जीवन-दीप एक दिन सहसा बुझ गया। पुत्र के पृथक्करण का अभिशाप मीरादेवी को जिस हृद्रोग के प्रबल दौरो के रूप मे मिला, उसे देवदत्त अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर भी दूर न कर सके। महँगे-से-महँगा उपचार उन्होने कराया, किन्तु विधि-विधान के समक्ष उनकी एक न चल सकी।

पत्नी को सदा के लिए खोकर देवदत्त ने स्वीकार किया कि उनका जीवन आँधियो और तूफानो का सामना करते-करते ही बीत गया। सुख और सन्तोष का वह कभी स्वप्न मे भी स्पर्श न कर सके। बचपन, किशोरावस्था, तरुणाई और बुढापा—जीवन की ये सभी अवस्थाएँ घोर सघर्षो का सामना करते-करते ही बीत गईं।

एक प्रकाण्ड ज्योतिषी मित्र ने कभी देवदत्त को बतलाया था कि इस जीवन मे पत्नी मीरादेवी बहुत दिनो तक उनका साथ देगी। इसका अर्थ अब देवदत्त की समझ मे आ रहा है । उन्हे स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि अब अधिक दितो तक उनका जीवन-दीप जल नही सकता। दीपक को जलाए रखने के लिए जिस स्नेह और वर्त्तिका की आवश्यकता पडती है, वह उनकी पत्नी ही थी। मीरादेवी का अवसान हो जाने पर अब देवदत्त के जीवन मे आखिर रह क्या गया? अब तो जीवन की पगडण्डी पर न केवल भयावह सन्नाटा व्याप्त हो उठा है, प्रत्युत कुहू अँधेरा भी छा गया है। विषम

परिस्थितियो के काले मेघो ने देवदत्त के जीवन को चारो ओर से ढक लिया है।

स्नेह और वर्त्तिका ! हाँ, इन्ही दो उपादानो से दीपक जलता रहता है। और, ये दोनो उपादान मीरादेवी के रूप मे देवदत्त को सहज-सुलभ थे। किन्तु जीवन-सघर्षो से रात-दिन टकराते और निराशाओ तथा असफलताओ की असह्य पीडा से चीखते-चिल्लाते देवदत्त कभी भूलकर भी अपनी इस पत्नी को सुख-सतोष न दे सके। उस पत्नी को सुख-सन्तोष न दे सके, जो स्वय उनके जीवन-दीप को जलाए रखने के लिए स्नेह और वर्त्तिका बनकर रात-दिन तिल-तिलकर अन्त मे समाप्त हो गई।

देवदत्त को आज मीरा की एक-एक स्मृति पर आन्तरिक क्षोभ होता है, पश्चात्ताप होता है, दुःख होता है। अपनी विषम परिस्थितियो से सदा विक्षुब्ध और पीडित रहनेवाले देवदत्त ने इस सती-साध्वी और देवीरूपा पत्नी को जाने कितनी मानसिक वेदना पहुँचाई और उसके आँसुओ की सरिता प्रवाहित कराई। लेकिन परिस्थितियो की विषमता ने ही उन्हे ऐसा करने पर विवश किया। हाँ, परिस्थितियो की विषमता वह राक्षसी है, जो किसी भी मानव के विवेक को पलक मारते अविवेक बना डालती है और सरलता को कुटिलता मे परिवर्त्तित कर देती है। इस दशा मे आज देवदत्त केवल अपने आँसुओ का अर्घ्य ही उस पत्नी की पावन स्मृतियो पर अर्पित कर, प्रभु से दिवगत आत्मा को शान्ति-प्रदान करने और स्वय को उन समस्त कृत्यो के लिए क्षमा-प्रदान करने की प्रार्थना करते रहते है, जो परिस्थितियो की विषमताओ से बाध्य होकर उन्होने जाने-अनजाने इस जीवन मे अनेक बार किए है।

देवदत्त स्वय को इस दुनिया का महा अभागा प्राणी समझते है। बचपन से लेकर बुढापे तक उन्होने अपना जीवन विकट अभावो और विषमताओ से निरन्तर टक्कर लेते हुए बिता दिया। कभी किसी सुख-सन्तोष का गहरा अनुभव वह नही कर सके। दार्शनिक परिभाषा के अनुसार सुख और सन्तोष

मानव के अपने मन की जिस स्थिति का नाम है, उसे प्राप्त करने का भी देवदत्त ने अनेक बार यत्न किया, किन्तु वह उन्हे कभी उपलब्ध न हो सका। उन्हे तो जो कुछ मिला, वह था सदा असन्तोष, अभाव और तज्जन्य गहरी पीडा।

देवदत्त ने अपनी सीमित-सी परिस्थितियो मे रहकर भी अपने परिवार को सदा सुखी रखने मे कभी कुछ उठा नही रक्खा। पत्नी और सन्तान के प्रति वह सदा निश्छल रहे और किसी तपस्वी की भाँति ही तिल-तिलकर उन्होने अपने-आपको उत्सर्ग कर दिया। परन्तु सुख, सन्तोष और शान्ति थी कि सदा उनसे दूर भागती रही।

कितनी आशाएँ सँजोकर उन्होने अपने ज्येष्ठ पुत्र हरीश को पाला-पोसा और शिक्षित किया, किन्तु ग्रेजुएट होकर उसी पुत्र ने उनका एक दिन भी साथ न दिया। कितनी उमगो के साथ उन्होने हरीश का विवाह किया, किन्तु विवाह होते ही छ महीने के भीतर ही वह हरीश पितृद्रोही होकर परिवार से पृथक् हो गया।

देवदत्त ने सोचा था कि पत्नी की उतरती उम्र मे पुत्रबधू के गृह-प्रवेश से जो सहारा मिलेगा, उससे मीरादेवी को आराम मिलेगा और चैन से जिन्दगी के शेष दिन बीत सकेगे। परन्तु सहारा मिलना तो दूर रहा, उलटे उनकी बीमारी मे ही हरीश अपनी नवविवाहिता पत्नी को लेकर इस घर से चला गया और मीरादेवी को हृद्‌रोग का अभिशाप सदा के लिए दे गया। यही हृद्‌रोग अन्त मे उनके निर्वाण का कारण बन गया।

यह हरीश न केवल पितृद्रोही बना, प्रत्युत मातृहन्ता भी सिद्ध हुआ और पितृहन्ता भी यही होगा। देवदत्त को लगता है, वह तो अभागे है ही, लेकिन उनकी पत्नी भी अभागिन थी। यदि वही भाग्यशालिनी होती, तो जिन आशाओ को सँजोकर देवदत्त ने हरीश की उच्च शिक्षा पूरी की थी और उसका विवाह किया था, वह सब पूरी होकर रहती। लेकिन यह सब एक स्वप्न था, एक छलना थी और जीवन का बहुत बडा मृगजल था।

इधर पारिवारिक प्रहारो से देवदत्त का हृदय छलनी हो चुका था, उधर 'त्रिवेणी'-सचालक भी उनके बुढापे और जीवन-व्यापी सम्पादकीय अनुभव की चिन्ता न कर उन्हे परेशान करने पर तुले हुए थे। तरह-तरह के नवीन बन्धनो मे जकडकर वह ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रहे थे कि देवदत्त स्वय त्यागपत्र दे बैठे। 'त्रिवेणी'-सचालक की इस परवर्त्तित नीति का रहस्य भी देवदत्त से छिपा नही रहा। जनतत्रीय सरकार का ध्यान पत्रकारो की गिरती हुई दशा पर आकृष्ट हो चुका था। प्रेस-कमीशन की स्थापना हो चुकी थी और जोरो से उसने पत्रकारो की स्थिति की छानबीन प्रारभ कर दी थी। 'त्रिवेणी'-सचालक जिस अल्प वेतन पर अब तक देवदत्त की सेवाएँ ले रहे थे, उसकी सम्भावना अब नही रह गई थी। निकट भविष्य मे ही कभी-न-कभी भरपूर वेतन देने की विवशता से बचने के लिए ही, देवदत्त को पृथक् कर देने की यह भूमिका 'त्रिवेणी'–सचालक की ओर से बॉधी जा रही थी।

सरकारी प्रयत्नो का इतिहास हमारे देश मे बडा अजीब-सा है। गणतत्र भारत मे कोई भी कार्य करने के पूर्व सरकारी मशीनरी जो लम्बी-चौडी भूमिका बॉधती है और यथेष्ट शोर मचाकर सार्वजनिक कल्याण करने को अग्रसर होती है, उसमे उसे जो सफलता मिलती है, वह बहुत ही गौण रहती है। ऐसे कार्यो की पृष्ठभूमि पर जिन पीडितो-शोषितो को लाभ पहुँचाने की सद्भावनाएँ रहती है, वे ठीक नीव के पत्थर की भॉति नवनिर्मित इमारत के नीचे एकदम दब जाती है। इसी प्रेस-कमीशन की स्थापना के मूल मे शोषित पत्रकारो को लाभ पहुँचाने की सरकारी सदाशयता को अस्वीकार नही किया जा सकता, परन्तु इसका शोर मचते ही पूँजीपतियो ने देवदत्त-जैसे जिन कर्मठ पत्रकारो को पृथक् कर दिया, उनके लिए यह प्रेस-कमीशन अब क्या कर सकेगा? होना तो यह चाहिए कि सरकार चुप-चुप पत्रकारो की स्थिति का पता लगाती और उनके कष्टो को दूर करती।

दुनिया के सभी अभिशापो मे गरीबी निकृष्ट है। फिर गरीबी मे किसी असाधारण बीमारी का प्रवेश तो और भी भयावह है। देवदत्त शर्मा ने पेट

काट - काटकर जो थोडा-बहुत रुपया डाकघर के सेविग बैंक मे जमा कर रक्खा था, उसमे से अधिकाश तो ज्येष्ठ पुत्र के विवाह मे झोका जा चुका था; फिर पत्नी की असाधारण बीमारी मे भी वही जमा-पूँजी काम देती रही। अब जो थोडा-सा रुपया बच गया था, उसे यदि अपनी बीमारी मे डाक्टरो को लुटा दिया जाता, तो उन दो सन्तानो के लिए क्या बच रहता, जो देवदत्त की ऑखे बन्द होते ही अनाथ हो जायँगी ? बडे लडके हरीश से तो कोई आशा रही नही। वह तो देवदत्त के जीवन की सबसे बडी छलना और कभी ठीक न हो सकनेवाला नासूर सिद्ध हो चुका।

इन परिस्थितियो मे देवदत्त अपना उचित उपचार नही करा सके और दिनोदिन क्षीण होने लगे—घुलने लगे।

पूँजीपतियो के सामने केवल उनका अपना स्वार्थ रहता है। उन्हे किसीके सुख-दुख से कोई मतलब नही। 'त्रिवेणी'-सचालक की सख्तियाँ इतनी बढ गई कि एक दिन सचमुच देवदत्तजी को वहाँ से पृथक् हो जाना पडा। पारिवारिक प्रहारो से यो ही देवदत्त तिलमिला उठे थे, अब उनकी मनोदशा और भी खराब हो गई। धीरे-धीरे वह स्वय खाट से लग गए और अस्वस्थ रहने लगे।

—२५—

रोग-शय्या पर पड-पडे देवदत्त को अपना अवसान अत्यन्त निकट दीखने लगा। ससार की क्षणभगुरता और आत्मीय जनो की प्रवचना रह्-रह्कर उनके मानस-क्षितिज पर कौधने लगी। पत्नी की स्मृति मे देवदत्त की आँखे बराबर गीली हो उठती, किन्तु वह सयत्न उन्हे पोछ लेते। जो कही उनका छोटा पुत्र शम्भु और बेटी लज्जा, गीली आँखो का कारण पूछ बैठे, तो वह क्या उत्तर देगे उन्हे ?

जीवन के मध्य तक देवदत्त का छोटा-सा परिवार कितना सुखी था! रुपए-पैसे का सदा अभाव रहने पर और गरीबी से निरन्तर सघर्ष करते रहने पर भी देवदत्त का छोटा-सा परिवार अपनी परिस्थितियो की विषमता की चिन्ता न कर सदा सन्तुष्ट रहता और हँसते-मुसकराते दिन बिताए जाता। देखनेवालो पर इस परिवार के सुख-सन्तोष की गहरी छाप अनायास पड जाती। स्वय देवदत्त मन-ही-मन एक सन्तोष का अनुभव कर लेते कि न सही रुपया-पैसा, किन्तु भरा-पूरा परिवार तो है। पारिवारिक सुख और आनन्द की छाया मे धन-दौलत की प्यास ने देवदत्त को कभी बेचैन नही किया। परन्तु आज जीवन के अन्तिम क्षणो मे उन्हे लगता है कि उनकी सारी आशाएँ केवल स्वप्न-जाल थी।

आज यदि देवदत्त की पत्नी इस ससार मे होती, तो देवदत्त को रोग-शय्या पर पडे-पडे असह्य बेचैनी का अनुभव कदापि न होता। सेवा-शुश्रूषा के लिए भी उन्हे अपने छोटे पुत्र शम्भु और लज्जा बेटी के खेलने-खाने की

घडियो का अपहरण न करना पडता। लेकिन ज्येष्ठ पुत्र हरीश ने जब उनकी सारी आशाओ का रङ्गमहल ध्वस्त कर दिया, तब कोई दूसरा चारा ही क्या था ?

ज्येष्ठ पुत्र हरीश की कृतघ्नता पर देवदत्त का हृदय भर-भर उठता। इस मातृहन्ता और पितृहन्ता पुत्र को वह अपने पूर्वजन्म का मबसे बडा शत्रु समझने लगे। यो देवदत्तजी यह जानते है कि इस धरती पर जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। 'गीता' के दूसरे अध्याय मे अर्जुन से कही गई भगवान् कृष्ण की यह बात उन्हे सदा याद रहती —

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्व शोचितुमर्हसि ॥

अर्थात् जन्म लेनेवाले की मृत्यु निश्चित है और मरनेवाले का जन्म लेना निश्चित है। इसलिए इस बिना उपायवाले विषय मे शोक करना उचित नही।

फिर भी इस मृत्यु का जो कारण होता है, उस पर मानव-मात्र का ध्यान बरबस चला जाता है। और, देवदत्त को यह विश्वास हो गया है कि उनकी पत्नी की मृत्यु का कारण उनका यही कृतघ्न पुत्र है और स्वय उनकी आसन्न मृत्यु का कारण भी यही होगा।

इस पुत्र के पृथक्करण पर देवदत्त के मित्रो और सबधियो ने उन्हे जिन पत्रो द्वारा धैर्य प्रदान करने की चेष्टा की थी, उन पत्रो को उन्होने सुरक्षित रख छोडा था। आज बिस्तर पर लेटे-लेटे देवदत्त उन्ही पत्रो को पुन पढने का लोभ-सवरण न कर सके।

जिस समय हरीश अपने माता-पिता से पृथक् होकर एक होटल मे जाकर रहने लगा था, उसके कुछ समय बाद ही देवदत्त का एक नया चित्र उनकी एक कहानी के साथ एक मासिक पत्रिका मे छपा था। उस चित्र को देखकर देवदत्त के एक मित्र ने, जो राजस्थान के एक डिग्री-कालेज मे अँगरेजी के प्रोफेसर है, एक लम्बा-चौडा पत्र लिखकर देवदत्त को लिखा था—'आपके

चित्र को देखकर चिन्ता की लकीरे चेहरे पर साफ पढी जा सकती है। आप चिन्तित न रहा करे। हरीश के पृथक् हो जाने का मानसिक कष्ट मन से निकाल दीजिए। आपके अशान्त मन की स्थिति को मै समझ रहा हूँ। गत दो-तीन वर्षो से आप निरन्तर बीमारियो और मानसिक अशान्ति के शिकार हो रहे है। किन्तु ससार जब इतना कठोर है, तो क्या किया जाए ?

'वास्तव मे आजकल के सम्बन्ध दिखावटी रह गए है। पुत्र-प्रेम भी स्वार्थ-मय है। इस स्वार्थमयी सृष्टि को समझकर किसी दूसरे के सहारे नही रहना चाहिए। परमेश्वर ने आपको ऐसा बनाया है कि आप स्वय अपने ऊपर निर्भर रह सकते है। दूसरे के सहारे की आपको जरूरत नही है। परमेश्वर करे, वह दिन आपको न देखना पडे कि दूसरे का सहारा ताकना पडे।

'नब्बे प्रतिशत आज के शिक्षित युवक ऐसे ही स्वार्थी है, जिन्हे अपनी नाक के नीचे का ही दीखता है। वे स्वय अपने लाभ को नही समझते। वे समझते है कि माता-पिता अथवा परिवार की जिम्मेदारियो को क्यो अपने ऊपर उठाएँ।

'पुत्र-वियोग एक महाव्याधि है। दशरथजी इसी महाव्याधि के शिकार बने। मेरी आपसे प्रार्थना है, आप अपने मन से पुत्र-बिछोह का मानसिक कष्ट निकाल फेके और अपना सुख अपने मे ही है, इसी भाव को दृढ करे। परमेश्वर को धन्यवाद दीजिए कि लक्ष्मीस्वरूपा पत्नी आपको प्राप्त हुई है। ससार मे एक से दो, दो से तीन, तीन से चार-पॉच तक परिवार की सख्या बढती है, फिर ज्यो-ज्यो बच्चे योग्य होते जाते है, फिर पाँच से चार, चार से तीन, और अन्त मे एक रह जाता है। यही ईश्वरीय नियम है। आप इस कष्ट को मन से निकाल दीजिए। आपको साहित्य मे ही अपना सुख ढूँढना है।'

इन प्रोफेसर मित्र को जब देवदत्त ने पत्र भेजकर सारी बाते विस्तार के साथ लिख भेजी, तब उनका दूसरा पत्र मिला था—'पत्र मिला, तो जैसे गोली लग गई। हरीश से मुझे ऐसी आशा नही थी। मै मानता हूँ कि जीवन और यौवन के प्राचीन और नवीन दृष्टिकोणो मे प्रतिदिन इतना अधिक

अन्तर और वैषम्य होता जा रहा है कि पारिवारिक जीवन सघर्षमय हो गया है। लेकिन हरीश को मै आदर्श पिता का आदर्श पुत्र समझता था। उससे मुझे इस अशिष्टता की आशा कदापि नही थी।

'वास्तव मे शिक्षा-प्रणाली का ही यह दोष है कि आज पाश्चात्य देशो की तरह विवाह के पश्चात् पुत्र और बधू सयुक्त परिवार मे नही रहना चाहते। अपनी भावनाओ की पगडण्डी पर स्वच्छन्द विहार करना चाहते है।

'जो हुआ, सो हुआ, अब तो सन्तोष ही करना चाहिए। यह स्मरण रखिए, पुत्र-पुत्री से वृद्धावस्था मे सहायता की आशा करना मृग-मरीचिका है। पुत्र-पुत्री से कोई बडा लाभ नही। एक प्रकार का भार-सा बनकर वह रह जाते है।

'कभी-न-कभी हरीश को अपने कृत्यो पर पश्चात्ताप अवश्य होगा। उसके सात्त्विक सस्कार, जो क्षणिक आवेश की उत्तेजना मे बहक गए है, सन्मार्ग पर आएँगे और वह आपके चरणो पर सिर धरकर आँसू बहाएगा।

'आप शान्त रहिए। मन को भारी और व्यग्र न करे। जीवन के कडवे-मीठे घूँट हमे पीना ही पडते है।'

लेकिन देवदत्त को अफसोस है कि इस कृतघ्न पुत्र हरीश के सात्त्विक सस्कार आज तक न जागे, और अब क्या जागेगे ? देवदत्त की आँखे मुँद जाने पर यदि उसके सस्कार जागे भी, तो किस काम के ?

देवदत्त को स्मरण आया कि उनके ताऊ ने भी, जो अनेक पुस्तको के रचयिता है, हरीश को इस सबध मे कुछ पत्र लिखे थे, किन्तु उन्हे भी हरीश ने जो कुछ लिखा, वह इसी बात का प्रमाण है कि उसके सात्त्विक सस्कार शायद ही कभी जागे।

ताऊ ने देवदत्त को लिखा था—'गृह-परिस्थिति की विचित्रता सुनकर कष्ट हुआ; पर तुमको अपने चित्त मे अधिक खेद नही करना चाहिए। चि० हरीश आगे पढता, तो बहुत अच्छी बात थी। नही पढता है, तो इसमे तुम्हे खेद

करने की आवश्यकता नही। तुमने तो अपने कर्त्तव्य का पूरा-पूरा पालन किया।'

'हरीश के पृथक् हो जाने से हम सबको हार्दिक क्लेश हुआ। कुछ दिन तो तुम्हारी छत्रच्छाया मे रहकर वह निश्चिन्त रहता और तुम्हे सन्तोष देता। परन्तु आजकल की सन्तति ऐसी स्वार्थी और निर्मोह है कि वह अपने बडो की भावनाओ का रत्ती-भर विचार नही करती।

'मैने हरीश को पत्र लिखा था, किन्तु उसके उत्तर से स्पष्ट है कि व्याधि असाध्य जान पडती है। तुम लोगो के बीच इतना पार्थक्य कैसे पड गया, मै तो कुछ सोच नही सकता। कल मैने उसे पुन पत्र लिखा है। उसे फिर समझाने का प्रयत्न किया है और उसके हृदय मे करुणा उत्पन्न करने के लिए मैने यहाँ तक लिखा है कि तुम्हारा पिता जन्म का दुखिया है। बचपन मे पिता का प्यार नही जाना। किशोरावस्था मे किसीका स्नेह नही पाया। तरुणाई मे कोई सुख नही मिला। किसी तरह पढ-लिखकर, घरद्वार छोड परदेश मे नौकरी करता फिरा और तुम्हे पाला-पोसा, स्वय कष्ट सहा, किन्तु तुम्हे उच्च शिक्षा दिलाई। कभी उसे चैन की साँस लेने का अवसर नही मिला। अब समय था कि तुम पढ-लिखकर ग्रेजुएट हो चुके हो, तो अपने पिता के बुढापे मे उनको शान्ति पहुँचाते, उनकी सेवा करते और उन्हे सन्तोष प्रदान करते। परन्तु तुमने दूसरा मार्ग पकडा है और उन्हे बेचैन कर रक्खा है। फिर तुम्हारा पिता साधारण व्यक्ति नही है। वह हिन्दी का यशस्वी कवि, प्रख्यात कथाकार और प्रतिष्ठित पत्रकार है। ऐसे पिता की सेवा करने और उसकी आज्ञा मानने मे तुम्हे अपने भाग्य को सराहना था; किन्तु तुम हो कि उसे चैन से जीवित भी नही रहने देना चाहते।'

और, अब तो दिन के प्रकाश की भाँति स्पष्ट है कि हरीश ने देवदत्त को सचमुच चैन से जीवित न रहने दिया। देवदत्त के ताऊ का उक्त पत्र पाकर भी उस कृतघ्न हरीश पर कोई प्रभाव नही पडा। जाने किन तत्त्वो से हरीश का निर्माण हुआ है कि किसीकी अच्छी बात का उस पर कोई प्रभाव नही पडता।

देवदत्त के वयोवृद्ध श्वसुर ने भी हरीश को बहुत समझाया-बुझाया और सन्मार्ग पर लाने की अथक चेष्टा की, किन्तु उन्हे भी अपने प्रयत्नो मे निराशा ही हाथ लगी। उस समय उन्होने जो कुछ कहा था, उसका आज तक देवदत्त को अच्छी तरह स्मरण है—'हरीश के मस्तिष्क मे जो विषाक्त कीटाणु उत्पन्न हो चुके हैं, उनका नाश असम्भव है।'

एक अन्य कथाकार मित्र ने दिल्ली से देवदत्तजी को हरीश के पृथक्करण पर लिखा था—'आपके पुत्र का पृथक्करण और यह अनपेक्षित व्यवहार सन-कर मैने एक बार पुन यह समझा कि ये नाते-रिश्ते और गृहस्थी के धन्धे एक दूकानदारी के अतिरिक्त और कुछ नही है। इस वसुधा पर है तो सब कुछ, परन्तु भाग्य और अच्छे सस्कारो के बिना कुछ नही मिलता। पिता के रूप मे आपको जो क्षोभ तथा दुख हुआ, उसकी कल्पना मैं बखूबी कर रहा हूँ, कारण मैने इन बातो को भोगा और पाया है।

'सचमुच आपका पुत्र अभागा रहा। यौवन के प्रवाह मे बह गया। नारी के उन्माद ने उसे ग्रस लिया। शिक्षा सस्कृत की हो या ॲगरेजी की, अन्तर कुछ नही, वातावरण और सस्कारो का फल ही अपना काम करता है। लेकिन किसी-न-किसी दिन वह अभागा पुत्र अपनी करनी पर रोएगा। आखिर यौवन का झझावात क्या सदा टिकनेवाला है!'

यौवन का झझावात अब टिके या नष्ट हो, देवदत्त को मतलब ही क्या। उन्होने लज्जा बेटी को बुलाकर पत्रो का यह ढेर अपनी आलमारी मे जहाँ का तहाँ रख देने के लिए कहा।

लज्जा चुपचुप जाकर आलमारी मे यह रख रही थी कि देवदत्त ने पुन पुकारा—'लज्जा बेटी, सुनो।'

लज्जा ने निकट आकर कहा—'क्या दादा?'

'पत्रो का वह ढेर यही ले आ, बेटी!'

'अच्छा, दादा!' कहकर लज्जा फिर आलमारी से पत्रो का वह ढेर

ले आई और पिता के आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

'इन्हे सहन मे रखकर जला दे, बेटी!'

'वर्षो से सहेजकर जिन पत्रो को रखे रहे, दादा, आज उन्हे जला क्यो रहे है?' लज्जा ने नम्रता के स्वर मे पूछा।

'अब इनकी जरूरत नही, बेटी!'

'अच्छा, दादा!' कहकर लज्जा ने सहन मे जाकर सब पत्रो मे आग लगा दी। अधिक कुछ पूछकर वह अपने रुग्ण पिता को कोई मानसिक कष्ट नही पहुँचाना चाहती थी।

रोग-शय्या पर पडे-पडे देवदत्त इन जलते पत्रो को टुकर-टुकर देखते रहे। उनकी आँखो मे आँसुओ की छोटी-छोटी बूँदे अनायास झलमला उठी।

अभी-अभी लज्जा बेटी ने इन पत्रो को जला देने का कारण पूछा था, परन्तु देवदत्त ने उसे जो उत्तर दिया था, वह सत्य नही था। उन्होने जान-बूझकर लज्जा को यथार्थ बात नही बतलाई। अपनी इसी प्रवचना पर देवदत्त की आँखे गीली हो उठी।

अपने अन्तस्तल की यह आवाज वह कैसे अपनी पुत्री को सुनाते कि बेटी, इस बूढे का यह जर्जर शरीर ही जब चिता पर जाकर भस्म होने की प्रतीक्षा कर रहा है, तब इन पत्रो को भी भस्म कर देना ही मै ठीक समझता हूँ। इन्हे रख छोडने से आखिर होगा क्या? इन पत्रो पर जिस किसी की दृष्टि पडेगी, उसे हरीश-जैसे मातृ-पितृहन्ता पुत्र की कृतघ्नता पर गहरा क्षोभ ही हाथ लगेगा। लेकिन देवदत्त अब इस प्रसग को लेकर दुनिया के किसी प्राणी को क्षुब्ध नही करना चाहते। वह स्वय जितने क्षुब्ध और प्रपीडित हो चुके है, वही बहुत है।

—२६—

प्रफुल्ल के चले जाने पर सुमित्रा ने भोजन किया और चुपचाप जाकर अपने पलग पर लेट रही। परलोकवाद के सबध मे आज उसने प्रफुल्ल से जो बाते सुनी है, वे अब तक उसके अन्तराल मे रह-रहकर प्रतिध्वनित हो उठती थी। आत्मा की अमरता का विश्वास, जो सुमित्रा के मन मे पहले से ही था, आज और भी अधिक पुष्ट हो चुका था।

अपने पिता की अन्तिम इच्छा पूरी करने की जो भावना सुमित्रा को समय-समय पर दुविधा मे डाल देती थी, आज एक निश्चय मे परिणत हो चुकी थी। परलोकवाद की चर्चा से, सुमित्रा को यह निश्चय करने मे बडी सहायता मिली कि उसे अपने पिता की अन्तिम और अधूरी इच्छा पूरी करनी ही होगी। ऐसा न करने पर उसके पिता की आत्मा को शान्ति नही मिलेगी। और, पिताजी की अन्तिम इच्छा को पूरा करने का अर्थ है प्रफुल्ल के साथ सुमित्रा के जीवन-सूत्र का गुम्फित हो जाना।

प्रफुल्ल को परखने का जहाँ तक सम्बन्ध है, सुमित्रा ने यथेष्ट सावधानी से काम लिया है। रूप-रङ्ग, स्वास्थ्य, शिक्षा और व्यावहारिकता के साथ-साथ प्रफुल्ल धनवान् भी है। उसके साथ रहकर सुमित्रा सम्पूर्ण अर्थो मे सन्तुष्ट और सुखी रह सकेगी। ऐसा होने पर उसके पिताजी की आत्मा को निश्चय ही शान्ति मिलेगी। और, अपने इस आन्तरिक निश्चय का आभास भी सुमित्रा आज प्रफुल्ल को दे चुकी है।

बहुत रात तक सुमित्रा इन्ही विचार-वीचियो पर तिरती रही। कब

'कब तक लौटेंगे वहाँ से ?' सुमित्रा ने प्रश्न किया।

'आप तो जानती हैं कि वहाँ मेरा व्यवसाय चलता है।' प्रफुल्ल ने कहा—'कह नही सकता, कब लौटूँगा। इसीलिए फोन पर मैंने आपको अपने अचानक चले जाने की सूचना दे देना ठीक समझा।'

'लेकिन इस सूचना से मुझे कोई प्रसन्नता नही हुई।'

'अच्छा, तो दूसरी बात करता हूँ। मै समझता हूँ, इससे आपको प्रसन्नता होगी।'

'वह क्या ?'

'यह कि आप कुछ दिनो की छुट्टी लेकर कलकत्ता अवश्य आइए।'

'आजकल विद्यालय मे पढाई का महत्त्वपूर्ण समय चल रहा है। इसलिए छुट्टी लेना मेरे लिए ठीक न होगा।'

'लेकिन कुछ दिनो बाद, सम्भव है, आपको विद्यालय से सदा के लिए ही छुट्टी ले लेनी पड़, तब क्या होगा ?'

'यह अभी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता, घोष साहब! जब ऐसा अवसर आएगा, तब इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार कर लिया जाएगा।'

'तो किसी छुट्टी मे ही कलकत्ता आने की चेष्टा करे।'

'हाँ, यह हो सकता है।'

'आने के पहले मुझे तार द्वारा सूचना अवश्य दे दीजिए, जिससे हावडा स्टेशन पर मै स्वय पहुँच सकू और आपको कोई कष्ट न हो।'

'जी, अच्छा! नमस्कार!' और सुमित्रा ने स्वय रिसीवर रखकर आगे कोई बात करना उचित नही समझा—शायद उसे इस समाचार से तनिक भी प्रसन्नता नही हुई। उसका मन भारी हो उठा।

वह फिर जाकर चाय पीने लगी। एक प्याला चाय से सुमित्रा को कभी सन्तोष नही होता। कम-से-कम दो प्याले चाय वह पीती है। उसे कभी-कभी

अपनी इस आदत पर स्वय आश्चर्य होता है। पहले वह कभी चाय नही पीती थी। परन्तु इस ससार मे एकाकी रह जाने पर--पिताजी को खो चुकने पर--समय काटने ओर क्षणिक ताजगी का अनुभव करने के विचार से, उसने जो चाय पोनी शुरू को, तो अब एक बार मे ही वह दो प्याले से कम चाय नही पीना चाहती।

चाय का दूसरा प्याला पाते-पीते प्रफुल्ल के कलकत्ता जाने के अचानक निश्चय पर सुमित्रा बहुत खिन्न हो उठी। फोन पर बात करने-करते ही वह कुछ खिन्न हो उठी थी। कदाचित् यही कारण था कि उसने प्रफुल्ल से यह भी नही पूछा कि वह किस ट्रेन से अथवा वायुयान से कलकता जा रहा है। सुमित्रा को अपनी इस मनोवृत्ति पर एक खीझ होने लगी। क्या कहते होगे प्रफुल्लजी अपने मन मे इस सुमित्रा की सस्कृति पर ? ओर कुछ नही, तो शिष्टाचार के नाते ही सुमित्रा को यह पूछ लेना था कि किस ट्रेन या वायुयान से जाने का निश्चय किया है प्रफुल्ल ने। और, अधिक अच्छा होता कि वह स्वय जाकर उनको बिदा करती।

एक क्षण उसने कुछ सोचा, फिर सहसा उठकर फोन के पास जा पहुँची। रिसीवर उठाकर प्रफुल्लजो के फोन का नम्बर मिलाया और बोली--'हलो !'

लेकिन फोन पर किसीका उत्तर नही मिला। खीझकर उसने रिसीवर जहाँ-का-तहाँ रख दिया। कुछ क्षण वह असमजस मे पडी रही और जाने क्या सोचकर फिर वही नबर मिलाकर रिसीवर लेकर बात करने की चेष्टा की --'ह ..लो....।'

इस बार फोन के दूसरे छोर से प्रफुल्ल की परिचित आवाज सुनाई पडी-- 'आप कहाँ से बोल रहे है ?'

'जी, मै बोल रही हूँ।' सुमित्रा ने प्रसन्नता से भरकर 'रही' पर कुछ अधिक जोर देते हुए कहा--'पहचान नही सके क्या ?'

'ओह !' प्रफुल्ल ने कहा--'आपकी आवाज भी क्या मै भूल सकता हूँ, सुमित्राजी ! कहिए, क्या बात है ?'

'मै चाहती हूँ कि कलकत्ता प्रस्थान करते समय मै आपको बिदा दूँ। लेकिन आप ट्रेन से जा रहे है या वायुयान से ? और किस समय जा रहे है ?'

'मै वायुयान से जा रहा हूँ, सुमित्राजी ! इसमे लगभग चार घण्टे मे ही इलाहाबाद से कलकत्ते का लम्बा पथ तय हो जाता है। ट्रेन मे तो सोलह घण्टे से कम नही लगते।'

'वायुयान कब उडेगा यहाँ के हवाई-अड्डे से ?'

'ठीक साढे आठ बजे ।' प्रफुल्ल ने कहा—'यदि आप हवाई-अड्डे तक चलना चाहे, तो मै सात बजे आपको अपने साथ मोटर पर लेता चलूँ। लौटते समय ड्राईवर आपको मोटर से ही आपके निवासस्थान पर छोड देगा।'

'अच्छा, मै तैयार रहूँगी। आप यही से आने की कृपा कीजिए।'

'हार्दिक धन्यवाद !' प्रफुल्ल ने कहा और रिसीवर यथास्थान रख दिया।

सुमित्रा भी रिसीवर यथास्थान रखकर नहाने-धोने की तैयारी करने लगी। सात बजे के काफी पहले वह तैयार होकर प्रफुल्ल के आने की बाट जोहन लगी। इस बीच उसने परिचारिका से कहकर अपने बगीचे से गुलाब और बेला के कुछ फूल चुनवाकर एकत्र कर रक्खे थे। इन फूलो को एक बढिया खादी के रूमाल मे रखकर वह कोच पर बैठी-बैठी निहार रही थी और प्रफुल्ल के सम्बन्ध मे जाने क्या-क्या सोच रही थी।

सुमित्रा जब अपने-आपमे इस प्रकार कुछ उलझी-सी थी, तभी सहसा दरवाजे के बाहर किसी मोटर के प्रवेश करने की आवाज सुनाई पडी और धीमे-से स्वर मे हार्न भी बजता सुनाई पडा। सुमित्रा समझ गई कि प्रफुल्ल-जी आ गए है। वह कोच से उठी और फूलो का रूमाल एक हाथ मे सावधानी से लेकर बाहर की तरफ बढ गई। दरवाजे पर खडी परिचारिका से उसने कहा—'मै हवाई-अड्डे तक जा रही हूँ। घोष साहब को भेजकर नौ बजे तक

लौट आऊँगी।' और सुमित्रा तेज पगो से मोटर की तरफ बढ गई।

मोटर से उतरकर प्रफुल्ल ने मुसकराते हुए सुमित्रा का स्वागत किया और पिछली सीट पर बैठने का सकेत किया। सुमित्रा कुछ सकुचाती-सी मोटर कार की पिछली सीट पर जा बैठी। प्रफुल्ल भी सुमित्रा से कुछ अन्तर पर उसी सीट पर जा बैठा और ड्राईवर को आदेश दिया—'चलो शोफर!'

बमरौली के हवाई-अड्डे की ओर मोटर दौडने लगी। कुछ देर तक मोटर की पिछली सीट का वातावरण एकदम शान्त रहा। इस शान्ति को भग करते हुए प्रफुल्ल ने कहा—'मै समझ रहा था कि सुमित्राजी मुझसे नाराज है।'

'और अब नही समझ रहे है!' सुमित्रा ने मन्द मुसकराहट के साथ प्रफुल्ल की ओर देखते हुए कहा।

'नही!' प्रफुल्ल ने भी मुसकराते हुए कहा।

'क्यो भला?'

'इसलिए कि जब आप हवाई-अड्डे तक मुझे बिदा देने चल रही है, तब स्पष्ट है कि आप नाराज नही है।'

'और अस्पष्ट कब था?'

'जब कलकत्ता प्रस्थान करने की सूचना पाकर भी आपने टेलीफोन पर बात करना अचानक बन्द कर दिया था।'

'ओह! अब समझी!' सुमित्रा ने गभीर वाणी से कहा—'आप मेरी मनोदशा को तनिक भी नही समझ सके। बात यह थी कि आपके इस प्रकार सहसा चले जाने का समाचार सुनने के लिए मै उस समय तनिक भी तैयार नही थी।'

'यह मेरे प्रति आपकी आत्मीयता है।' प्रफुल्ल ने कहा—'लेकिन परिस्थितियो की चपेट मे पडकर मानव को कितने ही कार्य इस ससार मे अनिच्छापूर्वक भी करने पडते है, सुमित्राजी!'

'आज मुझे भी इसका अनुभव हो गया।' सुमित्रा ने गम्भीर होकर कहा।

'अच्छा, कभी कलकत्ता आने की चेष्टा अवश्य करे, सुमित्राजी !'

'कह नही सकती।'

'क्यो ?'

'मे एक कुमारी हूँ न !' नीची दृष्टि से सुमित्रा न कहा—'अधूरी नारी को अपना प्रत्येक पग बहुत सोच-समझकर उठाना पडता है।'

'लेकिन आप तो आचार्या हैं। साधारण कुमारी मे और आपमे धरती-आकाश का अन्तर है। आपको ऐसी बात नही सोचनी चाहिए।'

'प्रयत्न यही करूँगी।'

'इसके लिए अग्रिम धन्यवाद।'

'बस ?' एक जिज्ञासा-भरी दृष्टि से मुसकराते हुए सुमित्रा ने कहा।

'ओह !' प्रफुल्ल ने मानो धन्यवाद देने की साधारण-सी व्यावहारिकता का प्रदर्शन अनावश्यक समझते हुए कहा—'इस अभिव्यक्ति के लिए मै दुखी हूँ।'

'लेकिन मैने आपको दुखी करने के लिए नही टोका।'

'यह मै जानता हूँ, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने कहा—'और मुझे विश्वास है, आप मुझे कभी दुखी होने का अवसर न देगी।'

अब तक प्रफुल्ल की कार इलाहाबाद के पश्चिमी छोर को बहुत पीछे छोडकर बमरौली की बाहरी सीमा मे प्रवेश कर चुकी थी। सुमित्रा ने सम्भाषण का प्रसङ्ग बदल देने की चेष्टा करते हुए कहा—'लीजिए, वह दिखने लगा हवाई-अडडा।'

'हाँ, अब हमारे पृथक् होने की वेला निकट आ रही है, सुमित्राजी !' प्रफुल्ल ने कुछ दबी वाणी से कहा।

'पृथक् होने की वेला ही किसी दूरागत मिलन-सन्धि की पृष्ठभूमि

हुआ करती है, प्रफुल्लजी !' सुमित्रा ने सहसा कह दिया।

'ईश्वर कर, आपकी यह वाणी अक्षरशः और शीघ्र पूरी हो, सुमित्राजी !'

अब कही सुमित्रा को अपनी अभिव्यक्ति की भूल का पता लगा और उसे मन-ही-मन एक खीझ हो उठी। ऐसी बात उसे नही कहनी थी। परन्तु प्रत्यचा से छूटा हुआ बाण जिस प्रकार वापस नही आ सकता, उसी प्रकार जो वाणी व्यक्त हो चुकी, उसे वापस लना सम्भव नही।

कुछ देर तक दोनो मौन रहे। कुछ ही क्षणो मे कार हवाई-अड्डे पर जाकर खडी हो गई।

मोटर से उतरकर प्रफुल्ल के साथ सुमित्रा भी तैयार खडे वायुयान तक चली गई। इधर-उधर की बातचीत करते-करते जब वायुयान के उडने का समय हो गया, तब सुमित्रा ने गुलाब और बेला के वह फूल, जो खादी के एक शुभ्र रूमाल मे सहेजकर रख छोडे थे, प्रफुल्ल को देते हुए कहा—'एक नम्र उपहार—एक अकिंचन कुमारी की साधारण भेट।' और यह कहते-कहते जाने क्यो, सुमित्रा का गला भर आया।

प्रफुल्ल ने फूलो का उपहार स्वीकार कर सुमित्रा की दोनो हथेलियाँ अपनी हथेलियो मे सस्नेह दबाते हुए कहा—'मेरे लिए यह उपहार असाधारण और अमूल्य है, सुमित्राजी !'

सुमित्रा ने प्रफुल्ल की हथेलियो के स्पर्श से एक मादक सिहरन का अनुभव किया। कुछ क्षणो तक वह आत्मविभोर-सी खडी रही।

इसी बीच वायुयान उडने की अन्तिम घण्टी टनटना उठी और प्रफुल्ल अपनी सीट की ओर बढ गया। सुमित्रा भी हवाई-जहाज की सीढियो से हटकर दूर जा खडी हुई। चन्द मिनटो मे ही हवाई-जहाज एक तीव्र भर्राहट के साथ कुछ दूर तक मैदान मे दौडकर सहसा आकाश-मार्ग मे उड गया और देखते-ही-देखते बहुत ऊँचा होकर अदृश्य हो गया।

सुमित्रा मोटर कार पर आकर बैठ गई और कहा—'चलो शोफर।'

—२७—

निर्मल नागर आज सुबह चाय पीकर जब अपनी बैठक म गए, तो स्थानीय दैनिक समाचार-पत्रो क साथ इस मास की 'त्रिवेणी' भी उन्हे मिली। प० देवदत्त शर्मा के कुशल सम्पादकत्व मे प्रकाशित होनेवाली 'त्रिवेणी' अनेक प्रतिष्ठित परिवारो मे नियमित रूप से खरीदी जाने लगी थी। नागर भी रुचि के साथ 'त्रिवेणी' पढा करते थे।

परन्तु इस मास की 'त्रिवेणी' पर सम्पादक के स्थान पर देवदत्तजी का नाम न देखकर उन्हे आश्चर्य हुआ। उन्होने उत्सुकतापूर्वक सपादकीय टिप्पणियाँ देखी, तो अन्त मे सचालक की ओर से दी गई एक सक्षिप्त-सी सूचना द्वारा ज्ञात हुआ कि प० देवदत्तजी शर्मा लम्बी अस्वस्थता के कारण 'त्रिवेणी' का सम्पादन करने मे असमर्थ है, अत उन्हे विवश होकर नवीन सम्पादकीय व्यवस्था करनी पडी है।

नागर तत्काल बैठक से उठकर 'त्रिवेणी' का यह अङ्क हाथ मे दबाए, अपनी पत्नी नलिनी के निकट भीतर पहुँचे और बोले—'देवदत्तजी बहुत अस्वस्थ है, नलिनी!' 'त्रिवेणी' का सम्पादन भी अब वह नही कर रहे है।'

'त्रिवेणी' का नया अङ्क नागर के हाथ से लेते हुए नलिनी ने व्यग्रतापूर्वक कहा—'देखूँ, इसमे कोई सूचना है?'

'सचालक की ओर से एक सक्षिप्त-सी सूचना है।'

शीघ्रता के साथ वह सूचना पढकर नलिनी ने कहा—'लेकिन यह सूचना

बहुत अस्पष्ट है। इससे यह पता नही चलता कि देवदत्तजी ने स्वय अवकाश-ग्रहण किया है, अथवा उन्हे इसके लिए विवश किया गया है।'

'सम्भावना यही है कि उन्हे विवश किया गया होगा।' नागर ने गम्भीरतापूर्वक कहा—'अस्वस्थता के समय भला, कौन पत्रकार यह चाहेगा कि उसकी आय का स्रोत एकदम बन्द हो जाए ?'

'तो जाकर आप पता लगाइए न !' नलिनी ने अनुरोध के स्वर मे कहा—'सुमित्रा से मुझे मालूम हुआ है कि देवदत्तजी बहुत ही भले मानुष है, बडे ही सहृदय और उदार है, परन्तु दुनिया ने उनकी सरलता, निश्छलता और सहृदयता का बहुत ही अनुचित लाभ उठाया है।'

'दुनिया की बात जाने दो, नलिनी ! स्वय उनके ज्येष्ठ पुत्र हरीश ने उनकी निश्छलता का सबसे अधिक दुरुपयोग किया है और उनकी सारी आशाओ का रगमहल ध्वस्त कर उन्हे असमय ही काल-कवलित होने पर विवश कर दिया है।' फिर एक क्षण रुककर उन्होने कहा—'अच्छा, मै अभी देवदत्तजी के घर जाकर सब बातो का पता लगाता हूँ।'

और, तत्काल नागर अपनी पोशाक बदलकर देवदत्त के घर की ओर चल पडे।

देवदत्त के घर पहुँचकर नागर ने देखा, बाहरी दरवाजा बन्द है। हौले-हौले उन्होने दरवाजे की कुण्डी खटखटाई, तो एक स्वस्थ और चपल किशोर ने दरवाजा खोलकर दोनो हाथ जोडते हुए नागर का अभिवादन किया।

'तुम्हारे पिताजी से मिलने आया हूँ।' नागर ने कहा।

'आइए।' चपल किशोर ने कहा—'वह बीमार है।'

'इसीलिए तो मै उन्हे देखने आया हूँ।' नागर ने भीतर पग बढाते हुए कहा—'तुम्हारा नाम क्या है, भाई ?'

'शम्भुदयाल !' उस चपल किशोर ने उनके आगे-आगे चलते हुए कह दिया।

'जय शम्भु! जय शङ्कर!' नागर ने कहा—'सुन्दर नाम है। साक्षात् शङ्कर इस घर मे रहते है।'

'शङ्कर तो कैलास मे रहते है—हिमालय पर्वत पर!' शम्भु ने धीमे स्वर मे कह दिया और मुडकर एक क्षण के लिए नागर की ओर दृष्टिनिक्षेप किया।

किशोर के इस उत्तर से नागर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। अब तक वह सहन मे पहुँच चुके थे। सहन से सटे हुए एक कमरे मे देवदत्त की रुग्ण-शय्या दीखने लगी थी, अत इच्छा रहने पर भी नागर अब शम्भु से और अधिक बातचीत न कर सके।

सहसा नागर को अपनी शय्या के सामने देख, देवदत्त ने साश्चर्य मुद्रा से कहा—'अरे, आप इस दीन-हीन की कुटिया मे?' और बिस्तर पर ही उठकर बैठने की उन्होने चेष्टा की, किन्तु तनिक-सा उठकर लडखडा गए और पुन लेट गए।

'आप आराम से लेटे रहिए!' नागर ने वही पड़ी एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा—'मुझे तो आज ही 'त्रिवेणी' का नया अङ्क देखने पर यह पता चला कि आप बीमार है।'

'हॉ, नागरजी!' देवदत्त ने कहा—'अब यह बीमार उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहा है, जो जीवन-नाटक के पर्दे को सदा के लिए गिरा देता है।'

'उस क्षण की प्रतीक्षा अभी से न कीजिए, शर्माजी!' नागर ने ध्यान-पूर्वक देवदत्त के गिरते हुए स्वास्थ्य को देखा और कहा—'अभी आपको अपनी बेटी का विवाह करना है और इस छोटे बच्चे का शिक्षण भी पूरा करना है न!'

'इच्छा तो यही थी, नागरजी!' देवदत्त ने एक ठण्डी सॉस छोड़ते हुए कहा—'लेकिन इच्छाएँ कब, किसकी पूर्ण होती है? उस दुष्ट हरीश को लेकर कितनी ही इच्छाएँ मैने कर रक्खी थी, किन्तु एक भी तो पूरी न हो सकी।'

'लेकिन हरीश की दुष्टता से इस प्रकार अपना दिल तोड बैठना और इन बच्चो के प्रति अपने कर्त्तव्य-पालन से उदासीन हो जाना आप-जैसे समझदार व्यक्ति के लिए शोभाजनक नही, शर्माजी !'

'कुछ बाते ऐसी होती है, नागरजी !' देवदत्तजी ने करवट बदलते हुए कहा—'जिन पर मानव का वश नही चलता। लज्जा बेटी के विवाह और चिरजीव शम्भु की उचित शिक्षा-दीक्षा की चिन्ता-चिता पर मै जीवन के अन्तिम श्वास तक जलता रहूँगा, लेकिन विवश हूँ कि कुछ कर न सकूँगा। भगवान् जाने, मेरी ऑखे बन्द होने पर इनका क्या होगा। और मेरी ऑखे बन्द होने मे अब अधिक समय नही रहा, नागरजी !' कहते-कहते देवदत्त की ऑखो मे अश्रु-मुक्ता झलमला उठे।

'आप अपने जीवन से एकदम निराश न हो, शर्माजी !' नागर ने कहा—'ईश्वर करे, आप जैसा कह रहे है, वह हरगिज न हो। लेकिन ऐसा हुआ भी, तो मै आपको यह वचन देता हूँ कि लज्जा और शम्भु दोनो मेरी पुत्री के ही साथ रहेगे और इनका पालन-पोषण तथा शिक्षण-विवाह आदि उसी तरह होगा, जिस तरह मेरी पुत्री का।'

'मुझे सन्तोष है कि एक हिन्दी साहित्यकार के प्रति आप-जैसे धनिक मे इतनी आत्मीयता हिलोरे ले रही है। आपका यह आश्वासन पाकर अब मै शान्तिपूर्वक अपनी ऑखे बन्द कर सकूँगा, नागरजी !' देवदत्त ने धीमे स्वर मे कहा और चुप हो गए।

निकट ही खडी लज्जा यह सब बातचीत सुन रही थी, लेकिन उसकी उपस्थिति का नागरजी और देवदत्तजी को शायद पता ही न चलता, यदि वह अचानक ही जोरो से सिसकियाँ भरकर रो न उठती।

नागर ने तत्काल कुर्सी से उठकर लज्जा के सिर पर अपना एक हाथ सहलाते हुए कहा—'इस तरह नही रोते, बेटी ! मै जानता हूँ, मेरी और शर्माजी की बाते सुनकर तुम्हे क्लेश पहुँचा है; परन्तु तुम अपना धीरज तोड दोगी,

तो तुम्हारे पिताजी को असह्य कष्ट होगा।'

'इधर आ बेटी!' देवदत्तजी ने हाथ फैलाकर लज्जा को अपने पास बुलाया।

लज्जा सिसकती हुई अपने पिता के पलग पर जा बैठी। उसकी पीठ थ,थपाते हुए देवदत्त ने कहा—'रो मत बेटी! नागरजी को अच्छी तरह पहचान ले। मै न रहूँगा, तो यही चाचाजी तेरे काम आएँगे।'

लज्जा की सिसकियाँ बन्द होने के स्थान पर और अधिक बढ गई।

शर्माजी, आप यह सब क्या कर रहे है?' नागर ने कहा—'बच्चो को इस प्रकार अधीर न होने दीजिए। ऐमी बाते करने से लाभ ही क्या?'

'लाभ क्यो नही है, नागरजी!' देवदत्तजी ने नागर की ओर दृष्टिनिक्षेप करते हुए कहा—'मेरी आँखे बन्द हो जाने पर इन बच्चो का जब कही कोई सहारा मुझे नही दीखता, तब इन्हे सहारा देने की जिस उदारता का आश्वासन आपने दिया है, उसका पता इन बच्चो को भी तो हो जाने दीजिए।' फिर एक क्षण रुककर पूछा—'शम्भु कहाँ है, बेटी?'

'अभी-अभी तो यही था, दादा!' सिसकियाँ भरते हुए रुक-रुककर लज्जा बोली—'पता नही, कहाँ चला गया।'

'होगा कही!' नागर ने कहा—'क्या उसे भी आप इसी तरह रुलाना चाहते है?'

'मै नही नागरजी, ईश्वर ही इन बच्चो को रुलाने पर तुला बैठा दीखता है।'

'वह रहा शम्भु भैय्या!' लज्जा ने इसी बीच कहा।

'कहाँ गए थे, शम्भुदयाल?' नागर ने पूछा।

'आपके लिए पान के बीडे लाने चला गया था।' कहते हुए शम्भु ने नागरजी के सामने पान के बीडे कर दिए।

'बडा समझदार है, मेरा शभु !' देवदत्त ने कहा—'आ बेटा, मेरे निकट आ !'

नागरजी को पान के बीडे देकर शम्भु अपने पिता के निकट जाकर पलग पर बैठ गया, फिर लज्जा की ओर देखते ही बोला—'अरे, तुम रो रही हो, बहिनजी ?'

'नही, भैय्या !' कहकर लज्जा ने अपनी दोनो आँखे पोछ डाली।

'देख, बेटा !' देवदत्तजी ने कहा—'इन नागर चाचा को तू पहचान ले। इनका घर जानता है या नही ? कभी कोई जरूरत पडी , तो इनके घर पहुँच सकोगे तुम ?'

'क्यो नही, दादा !' शम्भु ने अपनी स्वाभाविक अल्हडता के साथ कह दिया—'इनके बॅगले का नम्बर और मार्ग का नाम जान लेने पर जब आप कहेगे, मै इनके यहाँ पहुँच जाऊँगा।'

'देखा, नागरजी, इसकी प्रगल्भता को ?' देवदत्तजी ने कहा—'भगवान् इसे सदा स्वस्थ और सुखी रक्खे।'

'अच्छा, तुम लोग अब खेलो-कूदो।' नागर ने स्नेहपूर्वक बच्चो की ओर देखते हुए कहा—'मै तनिक देर तुम्हारे दादा से बात करना चाहता हूँ।'

'चलो भैय्या !' लज्जा ने शम्भु से कहा—'दादा के लिए सन्तरे का रस हम तैयार करे।'

'चलो !' कहकर शम्भु अपनी बहिन के साथ दूसरे कमरे मे चला गया।

बच्चो के हटते ही देवदत्तजी की आँखे एकदम बरस पडी। रुद्ध कण्ठ से उन्होने कहा—'यदि वह दुष्ट पुत्र हरीश हम लोगो के प्रति इतना कृतघ्न न होता, तो आज मुझे यह बेचैनी शायद न होती।'

नागर यह सब देखकर मर्माहत हो उठे। उन्हे लगा कि जिन शर्माजी ने अपना सारा जीवन बडे-बडे सघर्षो से निरन्तर टकराते हुए बिता दिया, वही आज अपनी जीवन-सन्ध्या मे अपनी पुत्री लज्जा और छोटे पुत्र शम्भु

को इस ससार मे सर्वथा निरावलब छोड जाने की सम्भावना से अपना धैर्य खो बैठे है।

'उसकी बात सोचकर आप व्यर्थ परेशान होते है, शर्माजी! जब वह आपकी सारी माया-ममता को ठोकर मार चुका और कोई सन्तोप उसने आपको नही दिया, तब उसकी नीचता का ध्यान कर इस प्रकार दुखी होने से लाभ ही क्या ? समझ लीजिए, पूर्वजन्म का वह आपका सबसे बडा शत्रु है।'

'यही समझकर रहना पडता है, नागरजी!'

'अच्छा, 'त्रिवेणी' से आपने स्वय सम्बन्ध-विच्छेद किया है अथवा सचालक ने आपको पृथक् कर दिया है?'

'दोनो बाते सत्य है, नागरजी!'

'क्या मतलब ?' साश्चर्य मुद्रा मे नागरजी ने प्रश्न किया।

'हाँ, दोनो बाते सच है, नागरजी!' देवदत्तजी ने कहा– सचालक ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी कि मुझे त्याग पत्र दे देना पडा, जिसे उन्होंने फौरन मजूर कर लिया।'

'मेरा अनुमान यही था। कोई बात नही।' नागर ने कहा—'आप तनिक भी चिन्ता न करे। आपके स्वस्थ होते ही मै एक पुस्तक-माला का प्रकाशन आपके सपादकत्त्व मे प्रारम्भ करना चाहता हूँ। नलिनी और सुमित्रा दोनो की यह हार्दिक इच्छा है।'

'स्वस्थ हो सका, तो आपको अपना सहयोग देने मे मुझे आत्मीय सन्तोष होगा, नागरजी!'

'आप अवश्य स्वस्थ होगे।' कुर्सी से खडे होते हुए नागर ने कहा—'अच्छा, मै अब चलता हूँ। हाँ, दवा किस डाक्टर की कर रहे है आप?'

'किसी की नही, चाचाजी!' यह स्वर लज्जा का था, जो सन्तरे का रस एक प्याले मे लेकर अपने पिता को पिलाने के लिए वहाँ आ पहुँची थी और चुपचाप खडी थी।

'यह तो इन बच्चो के ही साथ नही, प्रत्युत अपने शरीर के साथ भी बहुत बडा अन्याय है, शर्माजी !' नागर ने मर्मभेदी दृष्टि से देव.त्तजी की ओर देखते हुए कहा।

देवदत्तजी चुपचाप पडे रहे। कुछ नही बोले।

'अच्छा, डाक्टर राय को मै आज आपके पास भेजूँगा । मेरा नौकर उनके दवाखाने से दवा लाकर यहाँ दे जाया करेगा।' और देवदत्तजी को अभिवादन कर नागर चले गए।

-२८-

घर पहुँचकर नागर अपनी बैठक मे चुपचाप बैठ गए। पोशाक बदलने की भी उन्हे सुधि नही रही। देवदत्तजी की जो गिरती हुई दशा देखकर वह अभी-अभी आए है, वह एक शूल बनकर उनके हृदय को बेध रही है। एक मार्मिक वेदना से वह आक्रान्त हो उठे है। आखिर इस साहित्यिक तपस्वी के असामयिक और आसन्न अवसान के लिए कौन उत्तरदायी है? समाज, उनका ज्येष्ठ पुत्र अथवा उन पत्रिकाओ के सचालक, जिनका सम्पादन कर देवदत्तजी ने अपना सारा जीवन गला दिया?

देवदत्त के तीन रूप नागर की नजरो मे झूल रहे थे। पहला रूप एक कुशल कथाकार का था, दूसरा एक सद्गृहस्थ का और तीसरा एक सफल सम्पादक का। इन तीनो रूपो मे देवदत्त शर्मा की सेवाएँ, उनका पार्थिव शरीर नष्ट हो जाने पर भी युग-युग तक स्मरणीय और अनुकरणीय रहेगी। किन्तु यह कैसी विडम्बना है कि उनके जीवित रहते, उनकी इन सेवाओ का उचित मूल्याकन किसीने नही किया।

नागर कुछ और गहराई मे उतरकर सोचने लगे। कथाकार के रूप मे देवदत्तजी ने अपने उपन्यासो और कहानियो मे समाज के शोपित-पीडित और उपेक्षित वर्ग को कितना ऊँचा उठाया और आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व करनेवाले कितने ही ऐसे अमर चरित्रो की सृष्टि की, जो समाज के उत्थान और उत्कर्ष मे युग-युग तक सहायक होगे। परन्तु समाज ने इसके बदले देवदत्तजी को क्या दिया?

समाज की बात तो दरकिनार रही, स्वयं उनके ज्येष्ठ पुत्र ने देवदत्त को क्या दिया ? उनकी एक भी इच्छा पूरी नही होने दी उस कृतघ्न हरीश ने ! अपने पिता के उपन्यासो और कहानियो के अनुकरणीय चरित्रो का ही यदि इस हरीश ने विवेक के साथ अध्ययन किया होता, तो देवदत्तजी को आज अपने जीवन के अन्तिम क्षणो मे यह न कहना पडता कि यदि हरीश उनके प्रति कृतघ्न न होता, तो उन्हे यह बेचैनी न होती !

और, उन पत्र-सचालको ने भी देवदत्तजी का सदा शोषण ही किया, जिनकी पत्र-पत्रिकाओ का कुशल सम्पादन कर देवदत्त ने अपना सारा जीवन गला दिया। कहने को तो गान्धीवादी-युग मे हमारा देश आज पनप रहा है, सर्वोदय-सिद्धान्तो का आज जोरो से प्रचार किया जा रहा है, परन्तु इस प्राणान्तक शोषण और पीडन का अस्तित्त्व प्रत्येक सस्था मे इतनी गहराई तक प्रवेश कर चुका है कि उसके उन्मूलन का स्वप्न कब पूरा होगा, इसे हम विश्वासपूर्वक कहने का साहस नही कर सकते।

नागर अपनी बैठक मे बैठे हुए देवदत्त के जीवन की विडम्बनाओ पर जब इस प्रकार अभिभूत हो रहे थे, तभी घर के नौकर ने उनकी पत्नी नलिनी को भीतर यह खबर दी कि मालिक बाहर से वापस आ गए है और बैठक में चुपचाप बैठे कुछ सोच रहे है।

नलिनी तत्काल बैठक मे जा पहुँची। देवदत्तजी के समाचार जानने की उसे प्रबल जिज्ञासा जो थी! नलिनी ने देखा, सचमुच नागरजी चुपचाप बैठे किसी गहन विचार-धारा मे अवगाहन कर रहे है ।

दो-एक क्षण चुपचाप खडे रहने के बाद नलिनी ने कहा—'अरे, आप वापस आकर यही बैठ रहे ! पोशाक भी नही बदली अब तक ?'

नागर ने नलिनी की ओर उन्मुख होते हुए कहा—'मै पोशाक बदलने की बात एकदम भूल गया, नलिनी !'

'देवदत्तजी का समाचार भी आपने नही सुनाया ?'

'क्या सुनाऊँ, यही तो विचार रहा था।'

'क्यो , ठीक तो है शर्माजी ?'

'नही !' नागर ने विषादपूर्ण मुद्रा से कहा—'उनकी दशा बहुत गम्भीर है, नलिनी !'

'तभी उन्होने 'त्रिवेणी' से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया होगा ?' नलिनी ने एक कुर्सी पर बैठते हुए नागर से दूसरा प्रश्न किया।

'सम्बन्ध-विच्छेद की बात रहस्यपूर्ण है, नलिनी।' नागर ने कहा—'शर्माजी कह रहे थे, सचालक द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी गई कि उन्हे त्या-पत्र दे देना पडा, जिसे फौरन मजूर कर लिया गया।' एक क्षण रुककर नागर ने फिर कहा—'और इसका कारण मै जहाँ तक समझ सका हूँ, देवदत्तजी की अस्वस्थता नही, बल्कि प्रेस-कमीशन की स्थापना है। यह प्रेस-कमीशन पत्रकारो की दयनीय स्थिति की जो छानबीन कर रहा है, उसके फल-स्वरूप पत्रकारो की वेतन-वृद्धि अनिवार्य हो जाएगी। इस दशा मे अनेक पत्र-सचालक पुराने पत्रकारो को पृथक् करने के पचासो कारण उपस्थित कर देगे और नवीन नियुक्तियाँ कर अपनी बचत का मार्ग प्रशस्त कर लेगे।'

'गान्धीवादी देश के पूँजीपतियो की यह प्रवृत्ति बहुत ही गर्हित है।' नलिनी एक साँस छोडते हुए कहा।

'व्यक्तिगत स्वार्थ के आगे उचित-अनुचित का ध्यान रखना और दूसरो की आलोचना का स्वागत करना अब तक हमारे देशवासियो ने सीखा ही नही, नलिनी !'

'अच्छा, देवदत्तजी किस डाक्टर की दवा करा रहे है ?'

'किसी की नही।'

'अरे, आप कह रहे है, उनकी दशा बहुत गम्भीर है, फिर भी वह दवा नही करा रहे है ?'

'नही, नलिनी ! वह अपने जीवन से इतने निराश हो चुके है कि जीवित रहने की शायद कोई आकाक्षा उनमे नही रह गई है।'

• •

'और इस निराशा का कारण उनका वही कृतघ्न पुत्र होगा!'

'यही बात है, नलिनी! उनके जीवन की समस्त आशाएँ आकाश-कुसुम होकर रह गई, उनके सारे अरमान ध्वस्त हो गए। इस दशा म जीवन के प्रति उनमे क्या अनुराग रह सकेगा! लेकिन वह अपने छोटे बच्चे और पुत्री के लिए बहुत चिन्तित है।'

'आपने उन्हे इस चिन्ता से मुक्त करने का आश्वासन नही दिया? ऐसे साहित्यिक ऋषि के प्रति हमे अपना सर्वस्व भी लगा देना पडे, तो कम होगा। फिर, एक पुत्री के अतिरिक्त हमारी सपत्ति का कोई दूसरा अधिकारी भी तो नही। और देवदत्तजी के बडे पुत्र की कृतघ्नता को देखते हुए, मै अब आकाक्षा भी नही करती कि कोई पुत्र हमारे घर मे जन्म ले। आज के दूषित वातावरण मे इने-गिने पुत्र ही माता-पिता को सुखी रख पाते है।'

'देवदत्तजी को चिन्ता-मुक्त करने की मैने पूरी चेष्टा की है, नलिनी! मै स्पष्ट शब्दो मे कह आया हूँ कि आप अपने दोनो बच्चो की तनिक भी चिन्ता न करे। उनका पालन-पोषग और शिक्षण-विवाह आदि सब मेरी पुत्री के समान ही होगा।'

'इससे उन्हे कुछ शान्ति मिली या नही?'

'हॉ, नलिनी!'

'अच्छा, आज सध्या समय मै सुमित्रा के साथ उनके दर्शन करने जाऊँगी।' नलिनी ने कहा—'किसी डाक्टर को भेजकर उनके उपचार की व्यवस्था नही की आपने?'

'कर चुका हूँ, नलिनी! डॉ० राय आज जाकर उन्हे देखेगे और उनका उचित उपचार प्रारभ हो जाएगा।'

'बस ठीक है। अब चलकर नहा-धो लीजिए। भोजन तैयार हो चुका है।'

'चलो!' कहकर नलिनी के साथ ही नागर भीतर चले गए।

—२६—

इलाहाबाद के हवाई अड्डे—बमरौली—से जब वायुयान ने उडान भरी, तब मौसम बिलकुल साफ था। प्रफुल्ल अपनी सीट पर बैठा-बैठा कभी निर्मल आकाश और कभी दूरातिदूर भागती-सी वसुन्धरा की हरियाली देख रहा था। परन्तु नैसर्गिक छटा से सदा तृप्ति का अनुभव करनेवाला प्रफुल्ल आज एक अविदित-सी उदासी का अनुभव कर रहा था। यह उदासी बहुत-कुछ वैसी ही थी, जैसी अपनी पत्नी शैल को छोडकर कलकत्ते जाते समय प्रफुल्ल को हुआ करती थी।

प्रफुल्ल के अन्तर्मन ने स्वीकार किया कि आज वह सुमित्रा को छोडकर कलकत्ता जा रहा है, कदाचित् इसीलिए एक प्रच्छन्न-सा अवसाद उसके अन्तराल मे बिखर गया है और उसे अभिभूत कर बैठा है। आखिर यह सब क्यो न हो, जब यह सुमित्रा अचानक और अनाहूत-सी आकर प्रफुल्ल के मन-प्राणो पर उसी प्रकार छा गई है, जिस प्रकार किसी अगाध सागर का उज्ज्वल-उच्छल ज्वार, तट पर बिखरी बालु-राशि पर अपना आँचल फैला, उसे ढक लेता है। किसी उत्तुङ्ग पर्वत-शिखर पर जिस प्रकार दिवाकर की सुनहरी धूप सहसा स्वर्ण बिखेरकर उस पर्वत-शिखर को स्वर्णिम बना देती है—अपने ही रङ्ग मे रँग लेती है, ठीक इसी भाँति इस सुमित्रा ने प्रफुल्ल के एकाकी और रसहीन होते जीवन मे सरसता की मादक बूँदो की वर्षा कर उसे आत्मविभोर कर दिया है। प्रफुल्ल के जीवन के मरुप्रदेश मे यह सुमित्रा शाद्वल बनकर आ गई है।

प्रफुल्ल मन-ही-मन उस मङ्गल-वेला की कल्पना करने लगा, जब सुमित्रा उसकी जीवन-सगिनी बनकर उसके साथ एकाकार हो जाएगी। रेशम की चिकनी, मुलायम और उलझी लच्छियो-सी सुमित्रा की कुन्तल-राशि के काल्पनिक स्पर्श का अनुभव कर प्रफुल्ल आत्मविभोर हो उठा। परन्तु अधिक देर तक वह आत्मविभोर न रह सका।

वायुयान जिस स्वच्छन्दता और मस्ती से उडा जा रहा था, उसमे सहसा एक व्यतिक्रम आ गया। न केवल विमान की गति कुछ मन्द-मन्थर-सी प्रतीत हुई, बल्कि 'बम्पिङ्ग' भी होने लगा। प्रफुल्ल कई बार हवाई यात्रा कर चुका था, अत. वह जानता था कि वायुयान मे ऐसे धक्के और झटके तभी लगते है—बम्पिङ्ग तभी होता है—जब वायुमण्डल मे तूफान अथवा बादलो की सर-गर्मी रहती है। उसने खिडकी मे से झाँककर वसुन्धरा की ओर दृष्टि फेककर देखा, तो आँधी-पानी का विकट दृश्य देख, वह स्तब्ध रह गया। मूसल-धार पानी तो बरस ही रहा था, साथ ही आँधी और तूफान भी था।

बम्पिङ्ग क्रमश जोर का होने लगा। सभी यात्रियो के मुख पर गहन विषाद की रेखाएँ उभर आई। यद्यपि सीट के कमरपट्टो द्वारा सभी यात्री अपनी-अपनी सीट से बँधे हुए थे, फिर भी कुछ यात्रियो को वमन होने लगा और कुछ को चक्कर आने लगे। प्रफुल्ल दो-एक बार पहले भी ऐसी स्थिति मे पड चुका है और बम्पिङ्ग का अभ्यस्त हो चुका है। उसे न तो चक्कर आए, न वमन हुआ।

वायुयान सहसा ऊँचा उठने लगा। आँधी-पानी से मुक्ति पाने का यही एक उपाय था। ज्यो-ज्यो अधिक ऊँचाई पर विमान उडने लगा, बम्पिङ्ग कम होने लगा। प्रफुल्ल ने खिडकी मे से झाँककर देखा, उसका वायुयान अब बादलो के ऊपर—बहुत ऊपर—उड रहा था। विमान के नीचे विभिन्न रङ्गो के बादलो की दौड, मेघो की गर्जना, बिजली की चमक, नीचे होनेवाली वर्षा और ऊपर से उस वर्षा पर पडनेवाली सूर्य की सुनहरी किरणे एक अद्‌भुत दृश्य का सृजन कर रही थी। बरसते पानी मे इन्द्रधनुष के सातो रङ्ग

बहुत ही मोहक दीख रहे थे। प्रफुल्ल यह देखकर आत्मविभोर हो उठा।

प्रफुल्ल को लगा, बादलो के नीचे तो सभी लोग पृथ्वी पर रहते है, परन्तु बादलो के ऊपर, वायुयान मे उडकर ही हम जा सकते है। वायुयान का बम्पिङ्ग अब तक बहुत कम हो गया था और पृथ्वी पर बिखरी हरियाली आदि का आकार जितना छोटा दीख रहा था, वह इस बात का प्रमाण था कि हवाई-जहाज इस समय बहुत अधिक ऊँचाई पर उड रहा है। वायुमण्डल मे अधिक शीत का अनुभव भी होने लगा था।

प्रफुल्ल ने सन्तोष की एक हलकी-सी साँस ली। यह सन्तोष उसे इस-लिए हुआ कि कही ऐसे आँधी-पानी मे वायुयान किसी दुर्घटना का शिकार हो जाता, तो सुमित्रा से एकाकार होने की जिस मगल वेला की आशा मे अभी-अभी वह आत्मविभोर हो रहा था, वह कल्पना मात्र ही रह जाती और उसकी आशाओ का सुनहरा महल ही ध्वस्त हो जाता।

परन्तु इस सन्तोष का अनुभव भी प्रफुल्ल अधिक समय तक न कर सका। जाने क्या हुआ कि वायुयान पुन नीचे की ओर उतरने लगा और बादलो के बीच उडने लगा। आँधी-पानी से टक्कर लेते हुए वायुयान मे पुन जोरो का बम्पिङ्ग होने लगा। अब सभी यात्रियो की बेचैनी बढने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि महाकाल अपना विकट मुँह फैलाए उस वायुयान को निगल जाने के लिए छटपटा रहा है और सभी यात्रियो का किसी प्रलय मे सदा के लिए विनष्ट हो जाना अब सन्देह से दूर नही है।

प्रफुल्ल की मनोदशा भी अब डावाँडोल हो उठी। उसे रह-रहकर सुमित्रा का ध्यान आ रहा था। तो क्या सुमित्रा के दिवगत पिता की अधूरी इच्छा को पूरा करने का मैने जो सकल्प किया और सुमित्रा ने जिसके फलस्वरूप मेरी ओर इतना अनुराग दिखलाया, वह सब एक खेल ही रह जाएगा? क्या सुमित्रा के पिता की अधूरी इच्छा कभी पूरी न होगी? क्या सुमित्रा आजीवन अधूरी नारी रहेगी? कौन जाने, क्या होगा? जब अपने ही जीवन का अस्तित्त्व सकट मे है, तब किसका क्या होगा,

यह सब विचार करना भी इस समय प्रफुल्ल को अच्छा न लगा। ..

वायुयान का बम्पिङ्ग उत्तरोत्तर बढता गया। आँधी-पानी का वेग भी बढता जा रहा था। पता नही, वायुमण्डल मे सहसा यह परिवर्त्तन कैसे हो गया? इलाहाबाद से चलते समय मौसम बिलकुल साफ था, आकाश एकदम निर्मल था। लेकिन दो सौ मील की यात्रा करते-करते वायुयान को ऐसे सकट मे फँस जाना पडेगा, यह तो कल्पना से भी परे था!

लेकिन मानवीय कल्पनाओ और सकल्पो के परे भी कोई शक्ति अपना अलौकिक अभिनय करती रहती है, अदृष्ट की प्रबलता अचानक ही मानव को सुनहरी आशाओ का महल ध्वस्त कर देती है और अकल्पित घटनाएँ इस ससार मे घटकर रहती है, इसे मानव समझ ही कब सका है?

सहसा वायुयान के इजन मे खराबी आ गई। विमान-चालक ने उसे एकदम नीचे उतारने की चेष्टा की, परन्तु यह चेष्टा सर्वथा विफल रही और वायुयान का इजन सहसा वज्रघोष के साथ फट पडा—आग की सर्वभक्षी ज्वालाएँ लपलपा उठी। ऊबड-खाबड-सी एक पहाडी भूमि पर वायुयान क्षत-विक्षत होकर गिर पडा।...

—३०—

रात मे नलिनी और निर्मल नागर बहुत देर तक देवदत्त शर्मा और कुमारी सुमित्रा के जीवन की विडम्बनाओ पर अभिभूत रहे। नागर के अनुरोध पर डाक्टर राय ने देवदत्त शर्मा के घर जाकर न केवल बारीकी से उनके स्वास्थ्य की परीक्षा की, प्रत्युत उनका उचित उपचार भी प्रारम्म्भ कर दिया है। परन्तु रात मे डाक्टर राय ने टेलीफोन पर नागर को देवदत्तजी के सम्बन्ध मे जो सवाद दिया था, वह बहुत ही निराशाजनक था।

डा० राय जब देवदत्त के सबध मे टेलीफोन द्वारा नागर से बातचीत कर रहे थे, तब नलिनी भी नागर के पास बैठी थी।

टेलीफोन द्वारा बात पूरी हो जाने पर नलिनी ने स्वभावत चिन्तित होकर नागर से पूछा था—'तो क्या देवदत्तजी का स्वास्थ्य अब ?'

'जवाब देने की घडियाँ गिन रहा है!' नागर ने नलिनी की बात पूरी करते हुए कहा—'हाँ, नलिनी! अब ऐसी ही आशका है।'

'लेकिन सध्या समय जब मै सुमित्रा के साथ उन्हे देखने गई थी, तब तो वह बराबर बातचीत कर रहे थे। बेहोशी अथवा आसन्न अवसान का कोई लक्षण नही दीख रहा था।'

'यह आवश्यक नही है नलिनी, कि अवसान की घडियाँ गिननेवाले प्रत्येक मानव को बेहोशी आती हो। कुछ लोग तो अन्तिम क्षण तक बात-चीत करते रहते है और पूरी तरह होश मे रहते है।'

'लेकिन बहुत बुरा सम्वाद है!' नलिनी ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'हम लोगो को पहले ही देवदत्तजी की बीमारी का पता लग जाता, तो सम्भव है . ।'

'उनकी मृत्यु टल जाती?' नागर ने विक्षुब्ध होते हुए कहा—'यही तुम कहना चाहती हो, नलिनी? लेकिन यह तुम्हारा भ्रम है—बहुत बडा भ्रम। विधि-विधान के समक्ष मानव का कोई प्रयत्न सफल नही हो सकता।'

'मानती हूँ कि विधि-विधान को मिटा देने की क्षमता मानव मे नही है।' नलिनी ने कहा—'यदि ऐसा होता, तो इस ससार मे सम्राटो की मृत्यु कभी न होती। और देवदत्तजी ने अपने पुत्र हरीश को बनाने-सुधारने मे आखिर क्या कमी रक्खी, लेकिन यह विधि-विधान ही तो है कि वही पुत्र उनके लिए एक स्वप्नजाल सिद्ध हुआ, वह सदा हाथी के दाँत जैसा ही देवदत्तजी के लिए निरर्थक रहा।'

'हाँ, नलिनी! उसी पुत्र की कृतघ्नता और दुर्व्यवहारो से आज असमय ही देवदत्तजी काल-कवलित हो रहे है।' फिर एक क्षण रुककर नागर ने कहा—'मुझे तो यह ससार ही एक स्वप्नजाल प्रतीत होता है, नलिनी! मानव की इच्छाएँ यहाँ कभी पूरी नही होतीं, वे आकाश-कुसुम बनकर मानव को सदा बेचैन बनाए रहती है। दूर जाने और सोचने-विचारने की आवश्यकता नही। सुमित्राजी का जीवन भी मुझे ऐसी ही विडम्बनाओ से भरा प्रतीत होता है। बेचारी अब तक जीवन का सच्चा सुख नही पा सकी।'

'इधर तो घोष साहब से उसकी काफी घनिष्ठता बढ रही है और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब वह जीवन के सच्चे सुख का स्पर्श शीघ्र ही कर सकेगी।'

'घनिष्ठता की बात मै भी जानता हूँ।' नागर ने कहा—'लेकिन वह इस सीमा तक बढ गई है, इसका मुझे कोई पता नही था।

'अजी, किसी सीमा-वीमा की कल्पना मत करे!' नलिनी ने तमतमाते हुए कहा—'मैने तो यो ही प्रसङ्ग छिडने पर अपनी सभावना प्रकट कर दी।'...

इसी तरह की बाते करते हुए यह दम्पति बहुत रात तक अभिभूत रहा। उनकी पुत्री लता भी कुछ देर तक इनकी बाते सुनती रही और जागती रही; लेकिन दस बजते-बजते उसे नीद सताने लगी और वह इस समय गहरी नीद ले रही थी।

लगभग ग्यारह बजे नागर और नलिनी भी अपने-अपने बिस्तर पर जाकर लेटे ही थे कि सहसा टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी।

'ओफ! इतनी रात को भी यह टेलीफोन दम नही लेने देता!' नागर ने खीझते हुए कहा और टेलीफोन के निकट जाकर उसका रिसीवर सँभालते हुए कहा—'हलो!'

टेलीफोन के दूसरे छोर से क्या समाचार आया और किसने क्या कहा, इसे नलिनी अपने बिस्तर पर लेटे रहने के कारण सुन नही सकी। लेकिन नागर की यह अभिव्यक्ति उसके कानो मे प्रवेश कर सहसा झनझना उठी और उसे स्तब्ध कर बैठी—'बहुत बुरा हुआ, डाक्टर ..!'

नलिनी तत्काल अपने बिस्तर से उठकर नागर के निकट जा पहुँची और पूछ बैठी—'आखिर क्या हुआ?'

'वही, जिसकी हम आशका कर रहे थे, नलिनी!' नागर ने दबे कण्ठ से कहा—'देवदत्तजी की हृदय-गति सहसा रुक गई।'

'डाक्टर राय की उपस्थिति मे ही या ?'

'हाँ, डाक्टर राय इस समय भी वही है।' नागर ने कहा—'शर्माजी के पडोस मे ही जो पुलिस-थाना है, वही से टेलीफोन किया है उन्होने।' फिर एक क्षण रुककर वह बोले—'मै अभी वहाँ जा रहा हूँ, नलिनी! देवदत्त-जी के बच्चो को जाकर छाती से लगाना इस कालरात्रि मे सबसे पहली आवश्य-कता है। सुबह शर्माजी की अन्त्येष्टि का प्रबन्ध किया जाएगा।'

'अवश्य जाइए।' नलिनी ने मर्माहत होते हुए कहा—'सुबह होते ही मै नौकर को वहाँ भेजूँगी। उसके साथ देवदत्तजी के दोनो बच्चो को आप

यहाँ भेज दीजिएगा।' फिर एक ठण्ढी साँस छोडते हुए कहा—'वह कृतघ्न पुत्र हरीश आखिर पितृहन्ता भी सिद्ध हुआ। धिक्कार है उसके मानव-जीवन पर। उसे भी खबर देगे क्या ?'

'जिसने अपने पिता के जीवित रहते कभी उनके सुख-दुख की खबर नही ली, बल्कि सदा उन्हे कलपाया, उसे उनके देहान्त की खबर देने से ही क्या होगा, नलिनी ! जिस हरीश की कृतघ्नता का स्मरण आते ही देवदत्तजी की आत्मा चीख पडती थी और मै जानता हूँ, ऐसी ही किसी चीख के साथ उनकी हृदय-गति सहसा बन्द हुई होगी, उसे खबर देकर मै उस दिवगत आत्मा को अशान्ति प्रदान करने का पाप नही बटोर सकता।' और नागर अपने कपडे बदलने चले गए।

नलिनी की आँखे ही नही, हृदय भी गीला हो उठा। वह चुप रही।

नागर अपनी पोशाक बदल रहे थे कि टेलीफोन की घण्टी पुन जोरो से टनटना उठी। नागर ने कपडे बदलते हुए कहा—'नलिनी, तनिक सुनो तो, कौन क्या कह रहा है ?'

'अच्छा !' कहकर नलिनी ने जाकर इस बार टेलीफोन का रिसीवर सँभाला—'हल्लो !'

टेलीफोन पर क्या सम्वाद मिला, इसे जानने के लिए नागर बहुत व्यग्र हो उठे। कुरता पहनते हुए नलिनी के पास ही आकर वह खडे हो गए थे। उन्होने नलिनी को टेलीफोन पर यह कहते हुए देखा—'मै अभी आ रही हूँ, बहिन ! तुम घबराओ नही।'

'क्या बात है , नलिनी ?' नागर ने अधीरता के साथ पूछा—'किसका फोन है ? इतनी रात मे तुम कहाँ जा रही हो ?'

'सुमित्रा बहिन के पास !' नलिनी ने घबराहट के साथ कहा—'प्रफुल्ल-जी की कोठी से सुमित्रा को अभी-अभी फोन पर सवाद मिला है कि आज

सुबह प्रफुल्लजी जिस वायुयान से कलकत्ता जा रहे थे, वह मार्ग मे चकनाचूर हो गया और एक भी यात्री जीवित नही बचा।'

'क्या कह रही हो, नलिनी!' नागर को जैसे उसकी बात पर विश्वास नही हुआ। उन्होंने फौरन प्रफुल्ल घोष की कोठी पर ही नही, स्थानीय अँगरेजी दैनिक पत्र के सम्पादकीय विभाग मे भी टेलीफोन करके इस हृदय-विदारक सम्वाद की सत्यता का प्रमाण लेना चाहा।

नलिनी हतबुद्धि-सी वही खडी रही। टेलीफोन द्वारा जब नागर को उक्त दु सवाद की सत्यता का पता चला, तो उनकी मुद्रा एकदम विवर्ण हो उठी। वह अपना मस्तक थामकर वही कुर्सी पर बैठ गए।

'आज की रात सचमुच कालरात्रि है, नलिनी!' नागर ने रुद्ध कण्ठ से कहा—'दु सवादो का ताँता-सा लग रहा है।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'प्रफुल्लजी का मुझे बडा सहारा था, लेकिन आज वह भी टूट गया। वैज्ञानिक युग ने मानव को जो अप्रत्याशित सुविधाएँ प्रदान की है, उन्ही मे मानव का अनपेक्षित विनाश भी सन्निहित है।'

'उस बेचारी सुमित्रा का अब क्या होगा?' नलिनी ने अपनी गीली आँखे आँचल के एक छोर से पोछते हुए कहा—'वह भी बडी अभागिन है। मै समझ रही थी कि अब सुमित्रा जीवन के सच्चे सुख का स्पर्श करनेवाली है; परन्तु यह कैसा वज्रपात हो गया बेचारी पर। उसकी भी सारी आकाक्षाएँ आकाश-कुसुम बनकर रह गई।'

'अभावो और बेचैनियो से टकराना ही मानव-जीवन की कसौटी है, नलिनी! इस कसौटी पर खरा उतरनेवाला ही सच्चा मानव है। इस सवाद से जब तुम स्वय घबरा उठी, तब सुमित्राजी को क्या खाक धीरज बँधाओगी?'

'प्रयत्न तो समझाने का ही करूँगी।' नलिनी ने रुद्ध कण्ठ से कहा।

'अच्छा, अब जल्दी करो।' नागर ने कहा—'लता को जगा लो। तुम दोनो को सुमित्राजी के यहाँ छोडता हुआ मै देवदत्तजी के घर चला जाऊँगा।'

'यही ठीक रहेगा।' कहकर नलिनी ने लता को जगाया और उसे तत्काल तैयार कर लिया।

नलिनी ओर लता के साथ नागर अपनी कार पर जा बैठे। अर्द्ध रात्रि के सघन अन्धकार को चीरनेवाले विद्युत् प्रकाश मे, भरे हृदय और गीली आँखो के साथ नागर का परिवार, सुमित्रा के निवासस्थान की ओर तीव्रता से बढा जा रहा था।

कार पर बैठी नलिनी की दृष्टि राजमार्ग से हटकर जहाँ-कही भी जाती, सर्वत्र कुहू अन्धकार का आँचल इस भू-मण्डल को आच्छादित किए एक क्रूर अट्टहास करता प्रतीत हो रहा था।

रात्रि का यह कुहू अन्धकार सहसा उमडती आँधी का योग पाकर बहुत ही भयावह लग रहा था। बिजली के जगमग प्रकाश मे तीव्र गति से दौडती कार मे बैठी नलिनी साफ़ देख रही थी कि राजमार्ग के दोनो किनारो पर खडे विशालकाय वृक्षो के पत्ते अपनी शाखाओ से टूट-टूटकर इस आँधी के साथ लक्ष्यहीन-से इधर-उधर उडते जा रहे थे।

कार की खुली खिडकियो की राह कितने ही उडते पत्ते नलिनी की गोद मे गिर-गिरकर उसे यह समझने की प्रेरणा दे रहे थे कि ये उडते पत्ते जिस प्रकार आँधी के झोको से शाखाच्युत होकर सर्वथा अस्तित्वहीन हो रहे है, ठीक इसी प्रकार मानव भी परिस्थितियो की आँधी के झोको मे, अपनो से दूर छिटककर बेगाना हो जाता है और इस ससार से कूचकर किसी दूसरे लोक का वासी हो जाता है।